मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 72 ● वर्ष 8, संयुक्तांक 7-8-9 ● सितम्बर-अक्टूबर-नवम्बर 2018 ● पाँच रुपये ● 16 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

दाभोलकर से लेकर गौरी लंकेश तक की हत्यारी सनातन संस्था की असली जन्मकुण्डली 8

क्रान्तिकारी चीन ने प्रदूषण की समस्या का मुक़ाबला कैसे किया 11

मोदी राज में बैंकिंग व वित्तीय सेक्टर के घपले-घोटाले और गहराता आर्थिक संकट 16

साढ़े चार साल के मोदी राज की कमाई!

ध्वस्त अर्थव्यवस्था, घपले-घोटाले, महँगाई-बेरोज़गारी, जन-अधिकारों पर डाका और नफ़रत की खेती की ख़ून से सिंचाई

अपना कार्यकाल पूरा करते-करते मोदी सरकार की कलई पूरी तरह खुलने लगी है। जब सारी जांच एजेंसियाँ जेब में हों और मीडिया की हैसियत पूँजीपतियों और उनकी मैनेजिंग कमेटी (सरकार) के दरवाज़े पर बैठी हुई कुतिया से ज़्यादा न रह गयी हो तो सच्चाई को काफ़ी दिनों तक छिपाया जा सकता है। मगर गन्दगी इतनी ज़्यादा बढ़ गयी है कि ध्यान भटकाने के तमाम हथकण्डों और ढाँकने-तोपने की सभी तिकड़मों के बावजूद बदबू चारों ओर फैलने लगी है और रामनामी दुशाले के नीचे से मैला बहकर बाहर आने लगा है।

''ना खाऊँगा ना खाने दूँगा'' का नारा उछालने वाले मोदी की हरचन्द कोशिशों के बावजूद राफेल घोटाले की सच्चाई छिपाये नहीं छिप रही है। एक झूठ को ढँकने की कोशिश में सरकार दस झूठ बोल रही है और एक-एक करके सब उजागर हो जा रहे हैं। बात-बात पर सदाचार और शुचिता की दुहाई देने वाले हिन्दुत्ववादी फ़ासिस्ट किसी भी मायने में दूसरी पार्टियों से कम भ्रष्ट नहीं होते यह तो पहले भी साबित हो चुका है। मगर इस सरकार ने तो घपलों के तमाम कीर्तिमान ध्वस्त कर दिये हैं। राफेल घोटाला तो रक्षा सौदों में अब तक का सबसे बड़ा घोटाला है ही, मध्य प्रदेश में व्यापम, बिहार में सृजन, छत्तीसगढ़ में चावल

सम्पादक मण्डल

घोटाले सहित इनकी राज्य सरकारें भी घोटालों की होड़ में किसी से पीछे नहीं हैं। यहाँ पर हम घोटालों की सूची नहीं गिनाने जा रहे हैं। केन्द्र से लेकर राज्य तक हर स्तर पर इतने घोटाले हैं कि नाम गिनाने में ही पूरा पन्ना भर जायेगा। वैसे भी चोर की नीयत तो एक ही चोरी से पता चल जाती है। जिस चौकीदार की नाक के नीचे से एक के बाद चोर नोटों की थैलियाँ लेकर निकल जाते हों और विदेशों में बैठकर क़ानून को ठेंगा दिखाते रहते हों उसे कौन अपने घर की रखवाली सौंपता है? तमाम सार्वजनिक प्रतिष्ठान (जो जनता की हड्डियाँ निचोड़कर संचित सरकारी खजाने से खड़े किये गये हैं) और जल, जंगल, ज़मीन, खनिजों के भण्डार आदि प्राकृतिक सम्पदा कौड़ियों के मोल पूँजीपतियों को बेचना भी अपने आप में एक भयंकर घोटाला है, जिसकी राशि सभी घोटालों से अधिक होगी।

और यह ग़ैर-कानूनी लूट तब है, जब श्रम क़ानूनों में भारी बदलावों के बाद, मज़दूरों की हड्डियाँ निचोड़ने के लिए पूँजीपतियों को छुट्टा छोड़ दिया गया है। उत्पादन-स्थल पर अपना हड्डी-निचोड़ शोषण करवाने के बाद, आम आदमी अपनी छोटी-छोटी बचतों से बैंक में जो पैसा रखता है या बीमा में जो पैसा लगाता है, उसे पूँजीपति निवेश करके एक से आठ कमाता है, और आम आदमी को बैंक से ब्याज के रूप में नगण्य राशि मिलती है। मोदी सरकार की कारगुजारियों से अब इस राशि के भी डूब जाने का ख़तरा मँडराता हुआ दिख रहा है। (देखें पेज 16)

फ़र्ज़ी आँकड़े दिखाकर विकास का ढोल चाहे जितना पीट लिया जाये, असलियत यह है कि अब इस सरकार के दावे दुनिया भर में मज़ाक का विषय बन चुके हैं। औद्योगिक उत्पादन में लगातार गिरावट आ रही है, खेती भयंकर संकट में है, पेट्रोल-डीज़ल की क़ीमतें आपस में रेस लगा रही हैं, डॉलर के मुकाबले रुपये की

(पेज 6 पर जारी)

गुजरात से उत्तर भारतीय प्रवासी मज़दूरों का पलायन

मज़दूर वर्ग पर बरपा 'गुजरात मॉडल' का कहर

पिछले दो दशकों के दौरान जहाँ एक ओर गुजरात हिन्दुत्ववादी फासीवाद की प्रयोगशाला बनकर उभरा, वहीं दूसरी ओर नवउदारवादी आर्थिक नीतियाँ भी सबसे नंगे रूप में गुजरात में ही लागू की गयीं। पूँजीवाद की सेवा में लगे तमाम अर्थशास्त्री और बुद्धिजीवी गला फाड़-फाड़कर 'गुजरात मॉडल' की ख़ूबियाँ गिनाते हैं। इस मॉडल के तहत पूँजी का स्वागत पलक-पावड़े बिछाकर किया गया और निवेश आकर्षित करने के नाम पर पूँजीपतियों को मनचाही रियायतों का तोहफ़ा दिया गया। लेकिन विकास के इस 'गुजरात मॉडल' ने मज़दूरों की ज़िन्दगी बद से बदतर कर दी। गुजरात में लगे उद्योगों में काम कर रहे मज़दूर लम्बे समय से आर्थिक तंगी से तो जूझ ही रहे थे, लेकिन पिछले दिनों वहाँ के प्रवासी मज़दूरों के अस्तित्व का ही संकट उठ खड़ा हुआ। गुजरी 28 सितम्बर को उत्तरी गुजरात के साबरकण्ठा ज़िले के एक गाँव में 14 महीने की एक बच्ची के साथ बलात्कार की नृशंस घटना में एक हिन्दी भाषी प्रवासी मज़दूर की संलिप्तता की ख़बर आने के बाद गुजरात के विभिन्न हिस्सों में प्रवासी मज़दूरों पर हिंसक हमले होने लगे। व्हाट्सऐप और सोशल मीडिया के ज़रिये इन हमलों की ख़बरें फैलने से गुजरात में रहने वाले लाखों उत्तर भारतीय प्रवासी मज़दूरों में डर व आतंक फैल गया, जिसके फलस्वरूप हाल के दिनों में गुजरात में काम कर रहे उत्तर भारतीय प्रवासी मज़दूरों का बड़े पैमाने पर पलायन देखने में आया है।

गुजरात उच्च न्यायालय में दायर की गयी एक जनहित याचिका के अनुसार 28 सितम्बर की घटना के बाद गुजरात से दो लाख से भी अधिक प्रवासी मज़दूरों का पलायन हुआ है। ये प्रवासी मज़दूर उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, मध्य प्रदेश और पश्चिम बंगाल जैसे राज्यों के रहने वाले थे। पलायन की ख़बरें ज़्यादातर साबरकण्ठा, पाटन, मेहसाना, गाँधीनगर और अरावली ज़िलों से सुनने में आयी। सिर पर घर-गृहस्थी का सामान लिए प्रवासी मज़दूरों के परिवार सहित गुजरात से पलायन के दृश्य किसी भी संवेदनशील व्यक्ति को झकझोर देने वाले थे, परन्तु सवाल तो यह उठता है कि आख़िर इतने बड़े पैमाने पर हुए पलायन की वजह क्या थी?

इस पलायन की तात्कालिक वजह कांग्रेसी विधायक अल्पेश ठाकोर द्वारा

(पेज 12 पर जारी)

आपस की बात

"स्वच्छ भारत अभियान" की कहानी झाड़ू की जुबानी

आज से चार साल पहले केन्द्र सरकार ने बड़े तामझाम से एक आयोजन किया था, नाम दिया गया - "स्वच्छ भारत अभियान"। सबने झाड़ू उठा लिया - नेता, अभिनेता, अफ़सर कोई नहीं बचा, सबने सफ़ाई करते हुए अपनी फोटुवे खिंचवाई और सोशल मीडिया पर डालीं, तब जाके झाड़ू को भी अपनी वैल्यू का अहसास हुआ। इतने बड़े-बड़े लोगों के हाथों में ख़ुद को देखकर वह फूली नहीं समा रही थी।

सफ़ाई को प्राथमिकता देने की यह शुरुआत उसे बहुत अच्छी लग रही थी, इसे देख सफ़ाईकर्मियों को भी गर्व महसूस हुआ कि जो लोग अभी तक हमें हीन भावना से देखते थे, कम-से-कम अब उस काम का महत्व तो समझे। लेकिन किसे मालूम था कि ये सब बस कुछ पल के लिए एक झोंके की तरह आया है और चला जायेगा, किसे मालूम था कि सफ़ाई का ये उत्सव राष्ट्रीय नौटंकी साबित होगा। लोगों को ज़्यादा इन्तज़ार नहीं करना पड़ा। अभियान की शुरुआत में ही जो लोगों को दिखा उसने इस सफ़ाई अभियान की पोल खोल दी। हुआ यूँ कि साफ़ जगह पे पहले कूड़े का ऑर्डर देके कूड़ा फैलाया जाता और फिर लोग बड़ी-बड़ी गाड़ियों से आते और उन साफ़ जगहों पर फैलाई गयी गन्दगी को झाड़ू लगाते और ये सब कैमरे के सामने किया गया, ताकि इसे सालों तक दिखाया जा सके। शुरू-शुरू में झाड़ू को बहुत ख़ुशी हो रही थी, यही तो वो चाहती थी कि सफ़ाई का काम समाज के एक तबक़े तक सीमित न रखा जाये, सभी लोग इसे अपना काम समझें। पर झाड़ू की ख़ुशी टिक नहीं पायी, दूसरे दिन उसे अन्धेरे कमरों में क़ैद कर दिया गया, समाज के उसी तबक़े के हाथों में वापस थमा दिया गया, जिसकी पीढ़ियाँ सफ़ाई करने के लिए ही अभिशप्त थी। सब कुछ बदल गया था, कल जो लोग उसको बड़े प्यार से हाथों में लिए खड़े थे, आज उसे देखना भी नहीं चाह रहे थे, कल जो लोग उसके साथ फ़ोटो खिंचवा रहे थे, आज उससे दूर भाग रहे थे। सफ़ाईकर्मियों को फिर जहालत और अकेलेपन के अन्धेरे में धकेल दिया गया।

उसके बाद से हर 2 अक्टूबर को यही कहानी पिछले कई सालों से चली आ रही है, अब तो ये फ़िक्स डिपोजिट की तरह हो गया है, जो एक नियमित समय पर रिनियुल किया जाता है। हर 2 अक्टूबर को अब भी झाड़ू को अन्धेरे कमरों से बाहर निकाला जाता है, पर अब वो उत्साहित नहीं होती, उसे पता है कि उसकी जगह किन हाथों में है।

झाड़ू सोचती है कि ये धोखे का खेल है जिसकी शिकार केवल वह ख़ुद नहीं है, बल्कि पूरी जनता है जिसके सामने ये नौटंकी परोसी जाती है, हर वो सफ़ाईकर्मी भी है जिसकी तकलीफ़ें इस महानौटंकी के शोर के पीछे दब जाती हैं। झाड़ू ने अपने पूर्वजों से सुन रखा है कि स्वच्छता दिखावा मात्र नहीं होना चाहिए, स्वच्छता हमारा स्वभाव होना चाहिए, क्योंकि दिखावा वो लोग करते हैं जिनका मन ही साफ़ नहीं है। झाड़ू उन सफ़ाईकर्मियों को देखती है, उनकी तकलीफ़ों को समझती है। वो ये भी जानती है कि पूरे समाज की सफ़ाई का दारोमदार इन्हीं के कन्धे पे है, पर उनको ना तो ये समाज बराबर का सम्मान देता है, ना आधुनिक मशीनें और ना ही समय से तनख्वाह। झाड़ू याद करती है कि 2015 में बनवारी लाल की मौत सिर्फ़ अपनी 4 महीने की सैलरी पाने के लिए अफ़सरों के चक्कर काट-काट के हो गयी, जबकि उसके मरने के बाद भी 4 महीने की सैलरी उसको नहीं मिली। वो सोचती है कि कम-से-कम स्वच्छता के नाम पर जो अभियान चल रहा है उसी के द्वारा उनको ये सब सुविधाएँ दिला दी जातीं, तो इस तरह वे बेमौत नहीं मरते। असल में जो होना चाहिए, वो किया नहीं जाता और जो हो रहा है उससे तो कुछ बदलता नहीं, चाहे गंगा की सफ़ाई हो या खुले में शौच हो या शहरो में कूड़े और नालों की सफ़ाई हो। स्वच्छता के नाम पे साफ़-सुथरी जगह पे झाड़ू चला लेने से इन्हें वोट मिल जाते हैं और सफ़ाई के इस आयोजन के शोर में सीवर की सफ़ाई के दौरान होने वाली मौतों की चीख़ें दब जाती हैं। पिछले 5 सालों में (25 मार्च 2013 से 25 मार्च 2018 तक) 877 सफ़ाईकर्मियों की मौत हुई, जिसकी गवाह झाड़ू रही है। उसने तो सैकड़ों और मौतें देखी हैं, जिनका कभी हिसाब ही नहीं किया गया, क्योंकि मेन होल की सफ़ाई के लिए ठेके पे ही कर्मचारी रखे जाते हैं जिनका नगर निगम के पास कोई आँकड़ा नहीं होता है, उनकी मौत तो गिनती में बहुत कम आ पाती है। सीवर में हाइड्रोजन सल्फ़ाइड गैस पायी जाती है जो अगर अधिक मात्रा में हो तो एक बार साँस लेने में ही मौत हो जाती है और जब इस तरह की मौत होती है तो एक साथ ग्रुप में होती है, क्योंकि जब अन्दर एक की मौत हो जाती है और वो बाहर नहीं आता तो दूसरा जाता है उसे देखने, वो भी नहीं आता तो तीसरा जाता है और इस प्रकार एक साथ कई लोग मर जाते हैं।

एक रिपोर्ट 9 मार्च 2016 की है, जिसके हिसाब से 22000 लोगो की मौत हर साल हमारे देश में हो जाती है। जिन मौतों को रोकना इस समाज की पहली प्राथमिकता होनी चाहिए, उसके बजाय कुछ और ही किया जाता है। 80% सफ़ाईकर्मियों की मौत रिटायरमेण्ट के पहले होना सफ़ाई अभियान का जो झुनझुना बजाया जा रहा है, उसकी पोल खोलती है, जिस देश में करोड़ों रुपये सफ़ाई के प्रचार में, घण्टों टीवी डिबेट में और बैनर-पोस्टर में बर्बाद किये जाते हों, जहाँ नेता-अभिनेता सभी इसकी अगुवाई करते हो, वहाँ ये मौतें झाड़ू को ये सोचने पे मजबूर करती है कि यह समाज कहाँ जा रहा है।

– राघवेन्द्र तिवारी, मुम्बई

''बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।'' - **लेनिन**

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।
बिगुल के लिए सहयोग भेजिये/जुटाइये।
सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिये।

पूँजीपतियों के पास दर्जनों अख़बार और टीवी चैनल हैं। मज़दूरों के पास है उनकी आवाज़ 'मज़दूर बिगुल'! इसे हर मज़दूर के पास पहुँचाने में हमारा साथ दें।

मज़दूर बिगुल के लिए अपने कारख़ाने, दफ़्तर या बस्ती की रिपोर्टें, लेख, पत्र या सुझाव आप इन तरीक़ों से भेज सकते हैं:
डाक से भेजने का पता: **मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना, डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020**
ईमेल से भेजने का पता: **bigulakhbar@gmail.com**

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमश: उपलब्ध कराये जा रहे हैं। मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर नि:शुल्क पढ़ा जा सकता है।

आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिये भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं :
www.facebook.com/MazdoorBigul

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर ''कम्युनिस्टों'' और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भर्ती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,

बहुत से सदस्यों को 'मज़दूर बिगुल' नियमित भेजा जा रहा है, लेकिन काफ़ी समय से हमें उनकी ओर से न कोई जवाब नहीं मिला और न ही बकाया राशि। आपको बताने की ज़रूरत नहीं कि मज़दूरों का यह अख़बार लगातार आर्थिक समस्या के बीच ही निकालना होता है और इसे जारी रखने के लिए हमें आपके सहयोग की ज़रूरत है। अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया जल्द से जल्द अपनी सदस्यता राशि भेज दें। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता :
मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigul
खाता संख्या : 0762002109003787, IFSC: PUNB0076200
पंजाब नेशनल बैंक, निशातगंज शाखा, लखनऊ

सदस्यता : वार्षिक : 70 रुपये (डाकख़र्च सहित); आजीवन : 2000 रुपये

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :
फ़ोन : 0522-4108495, 8853093555, 9936650658
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन: 8853093555
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-94, फ़ोन: 011-64623928
ईमेल	: bigulakhbar@gmail.com
मूल्य	: एक प्रति - 5/- रुपये वार्षिक - 70/- रुपये (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता - 2000/- रुपये

ऑटोमोबाइल इण्डस्ट्री कॉण्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन का प्रथम सम्मेलन सफलतापूर्वक सम्पन्न

7 अक्टूबर, 2018 को गुड़गाँव में 'ऑटोमोबाइल इण्डस्ट्री कॉण्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन' के बैनर तले 'ऑटोमोबाइल मज़दूर सम्मेलन' का सफल आयोजन किया गया। इस आयोजन में गुड़गाँव, धारूहेड़ा, मानेसर इत्यादि इलाक़ों से ऑटोमोबाइल क्षेत्र के मज़दूरों ने शिरकत की। यूनियन के संयोजक अनन्त ने सम्मेलन की ज़रूरत पर ज़ोर देते हुए कहा कि ऑटोमोबाइल सेक्टर में मज़दूर आन्दोलन पिछले लम्बे समय से एक गतिरोध का शिकार है। इस सेक्टर में पिछले 2 दशकों में मालिक वर्ग-प्रशासन को चुनौती देने वाले आन्दोलन पूरी ऊर्जा के साथ खड़े हुए लेकिन मुक़ाम तक पहुँच पाने में नाकामयाब रहे। उन्होंने आगे कहा कि बावल से लेकर गुड़गाँव तक रजिस्टर्ड यूनियनों के ऊपर हमले किये गये हैं और छँटनी की तलवार ठेका मज़दूरों के साथ अब स्थायी मज़दूरों के सिर पर भी लटक रही है। इन्हीं परिस्थितियों में पिछले एक दशक से जारी मज़दूर आन्दोलन के संघर्षों का निचोड़ निकालने के उद्देश्य से इस सम्मेलन का आयोजन किया गया था। ठेका मज़दूरों को गोलबन्द करने के साथ ही ठेका और स्थायी मज़दूरों की एकता की ज़रूरत पर बल दिया गया।

ऑटोमोबाइल इण्डस्ट्री कॉण्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन के सनी ने बात रखते हुए पिछले 20 वर्षों में ऑटोमोबाइल सेक्टर में लगातार बढ़ते ठेकाकरण की प्रक्रिया की तथ्यों के माध्यम से एक तस्वीर पेश की। उन्होंने बताया कि ऑटोमोबाइल सेक्टर देश का सबसे अहम सेक्टर है। पूरी जीडीपी में 10 प्रतिशत का योगदान ऑटोमोबाइल सेक्टर की ओर से होता है। पूरे सेक्टर में ठेके पर काम कर रहे मज़दूरों की संख्या में भारी बढ़ोत्तरी दर्ज की गयी है। मुख्य कारख़ाने और उनके साथ जुड़ी वेण्डर कम्पनियों के बीच के सम्बन्ध और उन कारख़ानों में खटने वाले ठेका मज़दूरों के काम के भयंकर हालात पेश किये। मज़दूरों को निचोड़ने के लिए समय के साथ ही मालिक वर्ग नयी तकनीक अपनाता है। अपनी बात को समेटते हुए उन्होंने कहा कि आज सेक्टरगत आधार पर ठेका मज़दूरों की एक यूनियन बनाने की ज़रूरत है। साथ ही आज ठेका और स्थायी मज़दूरों की एकता क़ायम करने की भी ज़रूरत है।

आइसिन कम्पनी के संघर्ष में सक्रिय रहे उमेश ने आइसिन के मज़दूरों के संघर्ष की एक तस्वीर पेश की। उन्होंने कहा कि यूनियन के पंजीकरण की उनकी जायज़ माँग पर मालिक और प्रशासन के गँठजोड़ ने हमला किया। पुलिस बल के इस्तेमाल से संघर्ष को तोड़ने में प्रशासन ने कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी, परन्तु मज़दूरों के हौसलों को तोड़ पाने में मालिक-प्रशासन-सरकार का गँठजोड़ नाकाम रहा। आज मज़दूरों को अपनी व्यापक एकता क़ायम करने की ज़रूरत है, सरकार और मालिक वर्ग के गँठजोड़ को तोड़ने का यही एकमात्र रास्ता है। रीको के प्रेमबहादुर ने भी विस्तार से रीको के संघर्ष की कहानी बयान की और मज़दूरों की एकजुटता की ज़रूरत पर बल दिया। होण्डा टप्पुकड़ा से सुरेन्द्र व राजपाल भी सम्मेलन में

शामिल हुए। सुरेन्द्र ने और राजपाल ने होण्डा टप्पुकड़ा के साथ ही मज़दूर संघर्ष समिति के अनुभव भी साझा किये। उन्होंने राजस्थान की वसुन्धरा सरकार ने राजस्थान में मज़दूरों के भयंकर दमन की सच्चाइयों को उजागर किया। साथ ही ऑटोमोबाइल इण्डस्ट्री कॉण्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन की इस पहल को प्रशासनीय क़दम बताते हुए अपनी एकजुटता ज़ाहिर की। डाइकिन से मनमोहन ने भी अपने अनुभव सदन के सामने रखे व इलाक़ाई एकता व सेक्टरगत एकता को खड़ा करने की बात पर बल दिया व डाइकिन यूनियन को खड़ा करने के दौरान लड़े गये संघर्षों का भी संक्षिप्त ब्यौरा दिया।

बिगुल मज़दूर दस्ता की ओर से अजय ने ऑटोमोबाइल सेक्टर में पिछले 20 वर्षों के दौरान चले संघर्षों का एक समाहार पेश किया। उन्होंने कहा कि ठेका मज़दूरों के मुद्दे संघर्षों में कभी मुख्य तौर पर नहीं उठाये गये हैं। तमाम यूनियनें ठेका मज़दूरों की माँगों को उठाती ही नहीं हैं, और यदि उठाएँ भी तो सिर्फ़ औपचारिकता निभाने के लिए उठाती हैं। ज़्यादातर संघर्षों में हार का यही एक कारण रहा है। आन्दोलन के शुरुआती दौर में ठेका मज़दूर जुड़ तो जाते हैं, लेकिन समय के साथ उनकी माँगों को नज़रअन्दाज़ किये जाने के कारण मोहभंग होने के चलते आन्दोलन से पीछे हट जाते हैं। नतीजतन स्थायी मज़दूरों की ताक़त कमजोर पड़ जाती है। आज जिस क़दर छोटी-छोटी फ़ैक्टरियों में काम बाँट दिया गया है, इन हालात में फ़ैक्टरी के आधार पर यूनियन बनाकर संघर्ष लड़ने का सफल नतीजा मिल पाना बेहद मुश्किल है। अजय ने मारुति और होण्डा के संघर्षों के उदाहरण से और उनका समाहार पेश करते हुए मज़दूरों को संघर्षों में केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों की भूमिका पर भी सोचने का सुझाव दिया। उन्होंने नतीजों के तौर पर ठेका मज़दूरों की एक यूनियन और ठेका व स्थायी मज़दूरों की एकता क़ायम कर ऑटोमोबाइल सेक्टर में संघर्षों के गतिरोध को तोड़ने के लिए ज़रूरी सम्बल बताया।

आटोमोबाइल इण्डस्ट्री कॉण्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन की ओर से शाम ने बात रखते हुए ऑटोमोबाइल सेक्टर में काम करने वाले मज़दूरों की ज़िन्दगी के अलग-अलग आयामों को पेश किया। एक ओर कारख़ानों में मज़दूरों का शोषण उनकी काम करने की क्षमता निचोड़ने तक किया जाता है, सुरक्षा के कोई इन्तज़ाम नहीं किये जाते हैं, वहीं दूसरी ओर काम से लौटकर लॉज में उनकी नारकीय ज़िन्दगी की तस्वीर पेश की। एक-एक लॉज में चार-चार मज़दूर रहने को मजबूर होते हैं। मालिक, ठेकेदार और मकानमालिक के मकड़जाल में मज़दूर बुरी तरह फँसे हुए होते हैं। एक तरफ़ गुड़गाँव की चमकती हुई इमारतें हैं और दूसरी ओर फ़ैक्टरी-कारख़ानों से सटे रिहायशी इलाक़ों में बसने वाले मज़दूरों के लॉज हैं।

बिगुल मज़दूर दस्ता से जुड़ीं व ऑटोमोबाइल इण्डस्ट्री कॉण्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन की क़ानूनी सलाहकार शिवानी ने पिछले संघर्षों का समाहार करते हुए आगे के संघर्ष की एक रणनीति पेश करते हुए कहा कि आज सेक्टरगत आधार पर मज़दूरों की एकता क़ायम करनी होगी तथा इसमें ठेका मज़दूरों की ज़रूरी भूमिका होगी, क्योंकि ऑटोमोबाइल पट्टी में क़रीबन 84 प्रतिशत मज़दूर ठेके के तहत ही काम करते हैं। यूनियन मज़दूरों की मालिक-प्रशासन के खिलाफ़ सामूहिक ताक़त होती है। आज ऑटोमोबाइल सेक्टर की एक स्वतन्त्र ट्रेड यूनियन का निर्माण ही मज़दूर वर्ग के लिए सबसे ज़रूरी काम है। स्थायी मज़दूरों की संख्या को कम करने के लिए फ़िक्स्ड टर्म एम्प्लोयमेण्ट जैसी नीतियाँ लागू की जा रही हैं। इस मसले पर अन्य वक्ताओं की बातों को रेखांकित करते हुए उन्होंने भी आज ठेका और स्थायी मज़दूरों की एकता को ज़रूरी बताया।

(पेज 4 पर जारी)

हरियाणा की जनता से अपील.....

हरियाणा रोडवेज कर्मचारियों की मांगें!

ये हड़ताल वेतन बढ़ने के लिए नहीं बल्कि
720 प्राईवेट बसों का ठेका रद्द करने के लिए है।

यूनियन की मांग है रोडवेज में 14000 बसें शामिल की जाऐ,
जिससे 84000 युवाओं को पक्का रोजगार मिल सकता है।

रोडवेज कर्मचारियों ने नई सरकारी बसों को खरीदने के लिए
10 महीनें तक 20 प्रतिशत वेतन देने को तैयार है।

प्राईवेट बसों में ना तो पक्का रोजगार होगा,
ना ही सुरक्षित व सस्ती यात्रा। साथ ही 40 विभिन्न
श्रेणियों के रियायतें के पास की सुविधा भी नहीं मिलेगी।

रोडवेज कर्मचारियों संघर्ष करो! हम आपके साथ हैं!

अपीलकर्ता: नौजवान भारत सभा
दिशा छात्र संगठन

महिला एवं बाल विकास विभाग में मोदी सरकार व केजरीवाल सरकार तथा विभाग की शह पर चल रहे महाघोटाले और भ्रष्टाचार का आँगनवाड़ी महिलाकर्मियों ने दिल्ली में किया पर्दाफ़ाश!

सीसीटीवी कैमरे और 'पोषण माह' मनाने से नहीं बल्कि पोषाहार की गुणवत्ता व मात्रा सुधारने तथा महिलाकर्मियों को पक्का रोज़गार देने से ही होगा योजना में सुधार!

20 सितम्बर को 'दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन' की ओर से समेकित बाल विकास परियोजना और उसके तहत काम करने वाले आँगनवाड़ी केन्द्रों में केन्द्र व राज्य सरकारों तथा विभाग की शह पर हो रहे भ्रष्टाचार और घोटाले का प्रेस कॉन्फ्रेंस के ज़रिये पर्दाफ़ाश किया गया। जिस देश का ग्लोबल हंगर इण्डेक्स में 119 देशों की सूची में 100वाँ स्थान हो, उस देश में समेकित बाल विकास जैसी परियोजना पर निश्चय ही सवाल खड़ा होगा! ऐसे में दिल्ली में आँगनवाड़ी केन्द्रों में सुधार के नाम पर सीसीटीवी कैमरे लगवाने की पहल करने वाली आम आदमी पार्टी की सरकार और 'पोषण माह' मनाने वाली केन्द्र की भाजपा सरकार की नीतियाँ आख़िर किस मक़सद से बनायी जा रही हैं। ऐसे में आँगनवाड़ी केन्द्रों में मिलने वाली सुविधाओं के स्तर और इस पूरी परियोजना में चल रहे भ्रष्टाचार को उजागर करने की पहल ख़ुद तृणमूल स्तर पर इसी परियोजना में काम करने वाली महिलाकर्मियों ने की। हाल में ही दिल्ली के मण्डावली इलाक़े में तीन बच्चियों की भूख की वजह से मौत की ख़बर ने इस देश का ध्यानाकर्षित किया था। उस पूरे मसले में भी केन्द्र व राज्य सरकार ने एक-दूसरे के ऊपर इस घटना की ज़िम्मेदारी थोपते हुए सिर्फ़ 'तू नंगा-तू नंगा' का खेल खेला था। वहीं दिल्ली के हस्तसाल परियोजना में आँगनवाड़ी केन्द्र में बाँटे गये पोषाहार के सेवन के बाद 12 बच्चों समेत केन्द्र में कार्यरत सहायिका, रमा, की तबीयत बिगड़ने का मसला भी सामने आया था। ऐसे गम्भीर मसले के बाद भी महिला एवं बाल विकास विभाग द्वारा ज़िम्मेदार एनजीओ के ख़िलाफ़ अब तक कोई कार्रवाई नहीं की गयी है। इसके बजाय पोषाहार में 'छिपकली' गिरी होने की सूचना देकर बच्चों की जान बचाने वाली सहायिका पर ही दण्डात्मक कार्रवाई करते हुए उन्हें बर्ख़ास्त कर दिया गया था। केन्द्र सरकार ने हाल में ही देश की 28 लाख आँगनवाड़ी महिलाकर्मियों के मानदेय में बढ़ोत्तरी की बात कही है, किन्तु चुनाव से पहले भाजपा द्वारा किये गये पक्के रोज़गार के वायदे का अब कोई ज़िक्र नहीं हो रहा है। साथ ही केन्द्र सरकार द्वारा सितम्बर महीना 'पोषण माह' के तौर पर मनाया गया, लेकिन पोषण पर ख़र्च की जाने वाली राशि को साल दर साल घटाया ही गया है। यही नहीं, समेकित बाल विकास परियोजना में तमाम तरह के भ्रष्टाचार और घोटाले साफ़ नज़र आते हैं, जिनमें खाने की आपूर्ति का ठेका देना हो अथवा सहायिका, कार्यकर्ता अथवा सुपरवाइज़र के पद के लिए भर्ती हो।

दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन की अध्यक्ष शिवानी कौल ने मीडिया से मुख़ातिब होते हुए यह बताया कि किस तरह केन्द्र व राज्य सरकारें इस स्कीम से अपना पिण्ड छुड़ाकर इसे जल्द से जल्द निजी हाथों में सौंपने की कोशिशों में लगी है। संयुक्त राष्ट्र संघ की बाल मृत्युदर अनुमान एजेंसी (यूएनआईजीएमई) की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत शिशु मृत्युदर के मामले में दुनिया में पहले स्थान पर है। यहाँ साल 2017 में 8,02,000 शिशु मौत का शिकार हुए। यानी हर दो मिनट में तीन बच्चों की मौत! ज़ाहिर है कि इसका कारण पोषाहार, स्वास्थ्य सेवाओं, पानी, सफ़ाई आदि की कमी ही है। अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर हो रही फ़ज़ीहत के कारण जिस स्कीम पर केन्द्र व राज्य सरकार को और भी ज़्यादा ध्यान देने की ज़रुरत है, उसमें भ्रष्टाचार और घोटाले का यह आलम है कि पोषाहार आपूर्ति करने वाले एनजीओ का दोष साफ़ तौर पर पाये जाने के बाद भी विभाग की ओर से उस पर कोई कार्रवाई नहीं होती!

वहीं आम आदमी पार्टी की सरकार भ्रष्टाचार विरोध की रट लगाकर सत्ता में आयी थी। किन्तु इस योजना में व्याप्त भ्रष्टाचार की ओर बार-बार ध्यान दिलाये जाने पर भी इसने कोई कार्रवाई की ही नहीं है! लेकिन इनका भ्रष्टाचार पर रोक ना लगाना तो यही इशारा करता है कि तमाम एनजीओ के साथ आम आदमी पार्टी के सम्बन्ध हैं। दिल्ली की आँगनवाड़ियों में खाने की आपूर्ति ठेके पर दी जाती है। इसमें तथ्यों की बात करें तो खाना आपूर्ति का ठेका 22 अलग-अलग एनजीओ के पास है। इनमें सबसे ज़्यादा ठेका 'स्त्री शक्ति' के पास है और 25 जुलाई 2013 की ख़बर के अनुसार इस एनजीओ के ऊपर साफ़-सफ़ाई की कमी के लिए 54,789 रुपये का जुर्माना लगाया जा चुका है। यही नहीं खाने की आपूर्ति के टेण्डर धारक तीन एनजीओ ऐसे भी हैं, जिनका मिड-डे मील की स्कीम के लिए दिया गया टेण्डर रद्द कर दिया गया है। इनमें इण्डीकेयर ट्रस्ट, द पीपल वेलफ़ेयर सोसाइटी व एकता शक्ति फाउण्डेशन अब भी क्रमशः 6, 8 व 1 परियोजना में पोषाहार की आपूर्ति करने का काम कर रहे हैं। कुछ वर्षों पहले भी दिल्ली के निगम स्कूल में मिलने वाले मिड-डे मील में 'चूहा' होने की ख़बर देने वाले प्रिंसिपल को न सिर्फ़ रिटायरमेण्ट से पहले निलम्बित कर दिया गया, बल्कि उनकी पेंशन भी रोक दी गयी थी। यही हश्र आँगनवाड़ी केन्द्रों में पोषाहार की शिकायत करने वाली महिलाकर्मियों के साथ भी किया जाता है।

केन्द्र सरकार ने हाल में ही यह घोषणा की है कि आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं और सहायिकाओं के मानदेय में क्रमशः 1500 व 750 रुपये की बढ़ोत्तरी की जायेगी! वैसे तो इस देश में शिवाजी की मूर्ति पर 3600 करोड़ व पटेल की मूर्ति पर 3000 करोड़ ख़र्च कर दिये जा रहे हैं, जिसका सीधा मक़सद जातीय वोट बैंक को भुनाना है, उलजुलूल के कामों में अरबों रूपये पानी की तरह बहाये जाते हैं, किन्तु आँगनवाड़ियों में ज़मीनी स्तर पर मेहनत करने वाली कार्यकर्ताओं और सहायिकाओं को पक्का रोज़गार देने की बजाय या तब तक न्यूनतम वेतन के समान मेहनताना देने की बजाय भुलावे में रखने की कोशिश की जा रही है। मोदी सरकार 28 लाख महिलाकर्मियों के वोटों का आने वाले चुनाव के लिए 1500 और 750 रुपये में मोल-भाव कर रही है!? लेकिन इस 1500 और 750 की बढ़ोत्तरी में भी झोल है! केन्द्र सरकार बढ़ायी गयी राशि में कार्यकर्ता व सहायिका को अपनी ओर से क्रमशः केवल 900 व 450 रुपये ही देगी, शेष राशि राज्य सरकार की ओर से दी जायेगी। 'पोषण माह' की बात करने वाली सरकार के अगर बजट की ओर रुख किया जाये तो यह साफ़ पता चल जायेगा कि पोषण पर असल में सरकार की ख़र्च करने की मंशा है ही कितनी। 2015-16 में पोषण के लिए 14,403 करोड़ रुपये आवण्टित किये गये थे, किन्तु 2016-17 में इस राशि को 6 प्रतिशत कम करते हुए 13,514 करोड़ रुपये कर दिया गया। और यह स्थिति तब है जब भारत शिशु मृत्युदर में सबसे आगे है। नीति आयोग की 2014 की रिपोर्ट के अनुसार देश में चलने वाली 41 फ़ीसदी आँगनवाड़ियाँ अपर्याप्त और छोटी जगहों पर चलायी जाती हैं, 13.7 फ़ीसदी आँगनवाड़ी केन्द्रों में पीने के पानी की समुचित व्यवस्था नहीं है, 66.72 फ़ीसदी आँगनवाड़ियाँ तय संख्या से अधिक को सेवाएँ प्रदान करती हैं।

केन्द्र व राज्य सरकार इस बेहद महत्वपूर्ण योजना के प्रबन्ध को बेहतर करने के बदले इसे निजी हाथों में सौंपने के लिए मौक़े की तलाश में बैठी हैं। इस योजना की सबसे महत्वपूर्ण कड़ी पोषाहार है, और यदि आम जनता ने पोषाहार की 'गुणवत्ता' देखकर इस योजना का लाभ लेना बन्द कर दिया तो सरकार के लिए इसे चलाने की ज़रूरत ही क्या बचेगी।

हस्तसाल प्रोजेक्ट से बर्ख़ास्त की गयी सहायिका रमा ने अपना अनुभव रखते हुए बड़े अधिकारियों की उदासीनता के रुख के बारे में बताया। सुपरवाइज़र और सीडीपीओ ऐसे किसी भी मसले पर कोई ध्यान ही नहीं देते हैं, जब उन्हें पोषाहार की गुणवत्ता की शिकायत की जाती है। हस्तसाल वाले मसले पर भी न तो बच्चों को ही समय पर कोई चिकित्सा व्यवस्था उपलब्ध करवायी गयी और न ही सम्बन्धित हेल्पर को। रमा को बयान वापस लेने के लिए भी दबाव बनाया जाता रहा और जब इसका कोई असर नहीं हुआ तो उन्हे ही दोषी करार कर टर्मिनेट कर दिया गया।

कई प्रोजेक्टों में भी अक्सर ही आने वाले खाने की गुणवत्ता बेहद ख़राब होती है। उदाहरण के लिए मिलने वाली पंजीरी पर उत्पादन तिथि होती ही नहीं, बस यह लिखा होता है कि एक महीने के अन्दर ही उपयोग कर लिया जाये, परन्तु इसके पैक होने की कोई तिथि नहीं डाली जाती। इसके ख़िलाफ़ शिकायत दर्ज करने पर कार्यकर्ताओं को बड़ी बेबाक़ी से 'अपने काम से मतलब' रखने की ही नसीहत दे दी जाती है। आँगनवाड़ी की निहाल विहार परियोजना में कार्यरत सहायिका मनीषा ने आँगनवाड़ी में भर्तियों में होने वाली तमाम तरह की धाँधलेबाज़ी के सम्बन्ध में बात राखी। वैसे तो विभाग के दिशानिर्देश के अनुसार 25 फ़ीसदी सहायिका को कार्यकर्ता व कार्यकर्ता को सुपरवाइज़र बनाने का प्रावधान है, परन्तु इसे कभी लागू नहीं किया जाता। ख़ाली पड़े पदों में नयी भर्ती ही की जाती है और कई बार तो उम्मीदवारों से सीधी रिश्वत माँगी जाती है। हाल में दिल्ली में कार्यकर्ता के पदों में होने वाली बहाली के लिए ग़ैर-जनवादी नियम लागू किये गये जिनके अनुसार कार्यकर्ता की बहाली के लिए उम्र सीमा 35 की गयी है, जबकी सहायिकाओं को इसमें छूट दी जानी चाहिए और प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

शिवानी कौल ने अन्त में बताया कि किस तरह समेकित बाल विकास योजना पूरी तरह से भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद, घोटालों और ग़ैर-ज़िम्मेदारी का शिकार है। तमाम पार्टियाँ, एनजीओ और अफ़सरशाही इस कुव्यवस्था के लिए ज़िम्मेदार हैं। जनता द्वारा जुटाये गये अप्रत्यक्ष करों के पैसे से भरे सरकारी ख़ज़ाने को लुटाया जा रहा है। यदि समेकित बाल विकास परियोजना में व्याप्त भ्रष्टाचार पर रोक नहीं लगायी जाती तो आने वाले लोकसभा और विधानसभा चुनावों में आँगनवाड़ी महिलाकर्मी और उनके परिवार भाजपा और आम आदनी पार्टी का पूर्ण बहिष्कार करेंगे। उन्होंने कहा कि आँगनवाड़ी महिलाकर्मी और उनके परिवार वाले उस पार्टी को ही अपने वोट देंगे जो आँगनवाड़ियों में मिलने वाले पोषाहार की मात्रा समुचित करे, इसकी गुणवत्ता बढ़ाये और काम करने वाली महिलाकर्मियों को पक्का रोज़गार दे। यूनियन भविष्य में भी योजनाओं में व्याप्त भ्रष्टाचार और घपलों का भण्डाफोड़ करती रहेगी। प्रेस कॉन्फ्रेंस की रिपोर्ट भी दिल्ली के तमाम अख़बारों व सोशल मीडिया चैनलों पर प्रकाशित की गयीं।

– बिगुल संवाददाता

ऑटोमोबाइल इण्डस्ट्री कॉण्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन का प्रथम सम्मेलन

(पेज 3 से आगे)

इसके अलावा मज़दूरों के पीएफ़, ठेका मज़दूर से जुड़े क़ानूनों व इण्डस्ट्रियल डिस्प्यूट एक्ट के सम्बन्ध में क़ानूनी राय भी रखी।

सम्मेलन में मज़दूरों ने कई प्रस्ताव भी पारित किये। ठेका मज़दूरों की सेक्टरगत यूनियन क़ायम करने के साथ ही मारुति के मज़दूरों को रिहा करने की माँग उठायी जायेगी, 7 फ़ैक्टरियों में हुई ग़ैर-क़ानूनी तालाबन्दी के ख़िलाफ़ आवाज़ उठायी जायेगी, सुरक्षा के पुख्ता इन्तज़ाम और न्यूनतम वेतन 20,000 करवाये जाने के अलावा अन्य माँगों पर ध्वनिमत से हाथ उठाकर प्रस्ताव पारित किये गये। मज़दूर सम्मेलन के समर्थन में ऑस्ट्रेलिया एशिया वर्कर्स लिंक की ओर से भी समर्थन पत्र भेजकर इस क़दम की सराहना की गयी। साथ ही अमरीका के ग्रुप एमसीजी ने भी क्रान्तिकारी एकजुटता पेश की। इसके अलावा पंजाब से कारख़ाना मज़दूर यूनियन और टेक्सटाइल हौज़री यूनियन, दिल्ली की पंजीकृत दिल्ली इस्पात उद्योग मज़दूर यूनियन व दिल्ली मेट्रो रेल कॉण्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन के साथ ही दिल्ली स्टेट की आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन की ओर से ही समर्थन पत्र भेजकर क्रान्तिकारी अभिवादन पेश किया गया।

भगतसिंह के जन्मदिवस के दिन लखनऊ में शिक्षा-रोज़गार अधिकार अभियान ने दी पहली दस्तक

उत्तर प्रदेश में शिक्षा और रोज़गार की बिगड़ती हालत पर सरकार का ध्यान खींचने के इरादे से प्रदेशभर के छात्रों-युवाओं और नागरिकों ने शहीदेआज़म भगतसिंह के जन्मदिवस के अवसर पर 28 सितम्बर को राजधानी लखनऊ में सरकार के दरवाज़े पर दस्तक दी।

नौजवान भारत सभा, दिशा छात्र संगठन और जागरूक नागरिक मंच की ओर से चलाये जा रहे शिक्षा-रोज़गार अधिकार अभियान के 10 सूत्री माँगपत्रक को प्रदेशभर से जुटाये गये हज़ारों हस्ताक्षरों के साथ उपज़िलाधिकारी के माध्यम से मुख्यमन्त्री को सौंपा गया। शिक्षा एवं रोज़गार से जुड़े सवालों पर प्रदेश में आन्दोलनरत विभिन्न संगठनों के प्रतिनिधि भी इस अवसर पर प्रदर्शन में शामिल हुए और सरकार को चेतावनी दी कि बेरोज़गारी के प्रति सरकारी उपेक्षा एवं दमन का रवैया प्रदेश में एक विस्फोटक स्थिति को जन्म दे सकता है।

लखनऊ के अलावा इलाहाबाद, गोरखपुर, सिद्धार्थनगर, अम्बेडकरनगर, मऊ, बलिया, चित्रकूट, उरई, ग़ाज़ीपुर, वाराणसी, ग़ाज़ियाबाद सहित प्रदेश के विभिन्न हिस्सों से आये सैकड़ों छात्रों-युवाओं, मज़दूरों एवं आम नागरिकों ने इस अवसर पर संकल्प लिया कि हर बच्चे और युवा को शिक्षा और हर हाथ को काम देने से जुड़े सवालों पर एक व्यापक आन्दोलन खड़ा किया जायेगा।

इको गार्डन में हुए इस प्रदर्शन के लिए सुबह से ही विभिन्न ज़िलों से आये प्रदर्शनकारी जुटने शुरू हो गये थे। चित्रकूट, अम्बेडकरनगर आदि से आने वाले छात्र-युवा भोर में 3 या 4 बजे ही गाड़ियों से रवाना हो गये थे, ताकि ख़राब सड़कों और पुलिस की टोका-टाकी के बावजूद समय से प्रदर्शन में पहुँज सकें।

सभा के दौरान बात रखते हुए इलाहाबाद से आए नौजवान भारत सभा के प्रसेन ने प्रदेश के विभिन्न हिस्सों में चलाये गये अभियानों के दौरान अनुभव साझा किया। उन्होंने कहा कि प्रतियोगी परीक्षाओं के पर्चे लीक होना अब आम बात हो चुकी है। पर्चा लीक करने वाले आम लोग नहीं हैं, वे बड़े-बड़े माफ़िया हैं जिनके पीछे धनिकों की ताक़त होती है। नौकरियों के जो थोड़े-बहुत अवसर मिलते हैं, वो भी आम नौजवानों की पहुँच से बाहर होते हैं। हमारे समाज में जैसे ही बच्चा स्कूल जाने लायक़ होता है, उसके सामने रुपयों की दीवार खड़ी कर दी जाती है, वह किस तरह के स्कूल में पढ़ेगा, यह इस बात से तय होता है कि उसके माँ-बाप के पास कितना पैसा है। जो बच्चे चाँदी के चम्मच मुँह में लेकर आते हैं उन्हें तो अच्छी शिक्षा मिल जाती है लेकिन बाक़ी बच्चों को घटिया शिक्षा ही नसीब होती है और उनमें से अधिकांश तो खेतों और फ़ैक्टरियों में खटने के लिए ही अभिशप्त होते हैं। प्रसेन ने यह भी कहा कि आजकल बच्चों और युवाओं में अवसाद भयंकर रूप ले चुका है। 2014 से 2016 के बीच 26 हज़ार से अधिक छात्रों ने आत्महत्या कर ली। कुकुरमुत्तों की तरह खुल रहे निजी कॉलेजों में योग्य शिक्षक तक नहीं होते हैं। उन्होंने कहा कि अगर ये लोकतन्त्र है तो सबको शिक्षा-सबको रोज़गार का अधिकार देना ही होगा।

दिशा छात्र संगठन के अंगद ने सभा के दौरान बात रखते हुए कहा कि हाल के दिनों में उत्तर प्रदेश में एसएससी पर्चा लीक और बीएड तथा बीटीसी अभ्यर्थियों व शिक्षामित्रों के कई आन्दोलन हुए। लेकिन इन सभी आन्दोलनों की कमजोरी ये रही कि वे निहायत ही संकीर्ण ढंग से केवल अपनी-अपनी माँगों तक सीमित रहे और इन आन्दोलनों की कड़ियों को एक सूत्र में पिरोकर एक व्यापक आन्दोलन खड़ा करने का कोई प्रयास नहीं किया गया। 68500 शिक्षकों की भर्ती को लेकर चल रहे आन्दोलन ने बीएड और बीटीसी के अन्य अभ्यर्थियों के आन्दोलनों के साथ एकजुटता की कोई कोशिश नहीं की। एसएससी पर्चा लीक के खिलाफ़ चल रहा आन्दोलन तो कोचिंग सेण्टर वालों के क़ब्ज़े में आकर दिग्भ्रमित हो गया। ऐसे में ज़रूरत इस बात की है कि ऐसे सभी आन्दोलनों को सबको एकसमान शिक्षा और रोज़गार की गारण्टी के व्यापक आन्दोलन के तहत जोड़ा जाये।

बिगुल मज़दूर दस्ता के तपीश मैन्दोला ने सबको एकसमान शिक्षा की माँग के महत्व पर बल देते हुए कहा कि यह माँग जीवन के अधिकार से जुड़ी माँग है क्योंकि आज के युग में शिक्षा के बिना इंसानी जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। उन्होंने बताया कि भारत में आज़ादी के बाद जिस तरीक़े से पूँजीवाद का विकास हुआ, उसकी वजह से बहुत बड़ी आबादी बुनियादी शिक्षा से ही वंचित हो गयी। 1980 के दशक में नयी शिक्षा नीति और 1990 के दशक की शुरुआत में निजीकरण, उदारीकरण और भूमण्डलीकरण की नीतियों के बाद तो शिक्षा एक बिकाऊ माल बन गयी और उसकी गुणवत्ता का स्तर लोगों की आर्थिक हैसियत के हिसाब से तय होने लगा। जिस अनुपात में आर्थिक ग़ैर-बराबरी लगातार बढ़ रही है, उसी अनुपात में शिक्षा तक पहुँच के अवसरों में भी ग़ैर-बराबरी बढ़ रही है। ऐसे में समान शिक्षा की माँग का महत्व और भी बढ़ जाता है।

नौजवान भारत सभा के आनन्द सिंह ने आरक्षण के मुद्दे पर बात रखते हुए कहा कि जहाँ एक ओर देश में यह मुहिम चलायी जा रही है कि आरक्षण ख़त्म कर दिया जाये तो बेरोज़गारी ख़त्म हो जायेगी, वहीं दूसरी ओर आरक्षण को और विस्तारित करके नयी जातियों और उपजातियों को उसके दायरे में लाने की कवायदें की जा रही हैं। आरक्षण को ख़त्म करने की बात करने वाले कभी उस आरक्षण की बात नहीं करते जो इस देश में धनिकों को मिला हुआ है। आज पैसे वालों को अच्छी शिक्षा और अच्छा रोज़गार मिलना ग़रीबों की तुलना में बेहद आसान है। लेकिन कोई भी राजनीतिक दल इस आरक्षण पर सवाल नहीं उठाता। दूसरी ओर जो लोग आरक्षण के दायरे को बढ़ाने या नयी जातियों को उसके दायरे को लेकर जातिगत समीकरणों की राजनीति कर रहे हैं, वे भी यह सवाल नहीं उठाते कि देश में नौकरियों की संख्या और रोज़गार सृजन की दर ही इतनी कम है कि कुछ लोगों को आरक्षण का लाभ मिल भी जाये तो व्यापक आम आबादी को उससे कोई लाभ नहीं मिलने वाला। ऐसे में आरक्षण के पक्ष या विपक्ष की राजनीति के चंगुल में फँसने की बजाय तीसरे क़िस्म की राजनीति की शुरुआत करने की ज़रूरत है, जिसकी माँग सबको एकसमान शिक्षा और रोज़गार की गारण्टी होनी चाहिए।

सभा का संचालन करते हुए जागरूक नागरिक मंच के सत्यम ने कहा कि राज्य के सरकारी स्कूलों में शिक्षकों के पौने तीन लाख पद बरसों से ख़ाली पड़े हैं, जो थोड़ी-बहुत भर्तियाँ हो भी रही हैं, उनको तरह-तरह के हथकण्डों से टाला जा रहा है और भर्ती की पूरी प्रक्रिया में भारी भ्रष्टाचार व्याप्त है। प्राइमरी से लेकर उच्च शिक्षा तक अन्धाधुन्ध निजीकरण ने शिक्षा का ऐसा बाज़ार बना दिया है, जहाँ आम घरों के बच्चों के लिए अच्छी शिक्षा पाना नामुमकिन होता जा रहा है। रोज़गार विभाग के अधिकारियों के अनुसार उत्तर प्रदेश में बेरोज़गारों की संख्या एक करोड़ तक पहुँच चुकी है, जबकि अर्द्धबेरोज़गारों को जोड़ लें तो यह आँकड़ा 4 करोड़ से ऊपर चला जायेगा। नये रोज़गार पैदा करना तो दूर, पहले से ख़ाली लाखों पदों पर भी भर्तियाँ नहीं हो रही हैं। सरकारी आँकड़ों के अनुसार यहाँ बेरोज़गारी की दर 6.5 प्रतिशत है, जोकि राष्ट्रीय दर 5.8 प्रतिशत से काफ़ी ज़्यादा है। 18 से 29 वर्ष के लोगों में हर 1000 व्यक्तियों पर प्रदेश में 148 बेरोज़गार हैं, यानी रोज़गार तलाशने की उम्र में लगभग हर छठा व्यक्ति बेरोज़गार है।

सभी सरकारें शिक्षा की उपेक्षा करती रही हैं और इसका बजट बढ़ने की बजाय लगातार कम होता जा रहा है। स्कूल जाने वाले प्रदेश के क़रीब 2.74 करोड़ बच्चों में से आधे से अधिक बच्चे सरकारी स्कूलों में जाते हैं जिनकी दशा बेहद ख़राब है। 10,187 प्राथमिक और 4895 उच्चतर प्राथमिक स्कूल तो ऐसे हैं, जो केवल एक शिक्षक के भरोसे चल रहे हैं। 55 प्रतिशत विद्यार्थी स्कूल जाते ही नहीं। स्कूलों की हालत सुधारने के बजाय वर्तमान सरकार अब हज़ारों सरकारी स्कूलों को ही बन्द करने की कोशिश कर रही है। अधिकांश प्राइवेट स्कूलों में भारी फ़ीस चुकाने के बाद भी बच्चों को ढंग की शिक्षा नहीं मिल पाती। कुकुरमुत्ते की तरह खुल रहे निजी मेडिकल-डेण्टल, इंजीनियरिंग और मैनेजमेण्ट कॉलेज मोटी फ़ीस वसूलने के बाद भी ऐसी घटिया शिक्षा देते हैं, जो किसी काम की नहीं होती। इतनी बुरी स्थिति के बावजूद प्रदेश में शिक्षा पर व्यय में लगातार कटौती की जाती रही है।

मुख्यमन्त्री को सौंपे गये ज्ञापन में अभियान की ओर से यह प्रमुख माँग उठायी गयी है कि 'हरेक काम करने योग्य नागरिक को स्थायी रोज़गार व सभी को समान एवं निःशुल्क शिक्षा' के अधिकार को संवैधानिक संशोधन करके मूलभूत अधिकारों में शामिल किया जाये। प्रदेश सरकार इस बाबत विधानसभा में प्रस्ताव पारित करके केन्द्र को भेजे। प्रदेश में शहरी और ग्रामीण बेरोज़गारों के पंजीकरण की व्यवस्था की जाये और रोज़गार नहीं मिलने तक कम-से-कम 10,000 रुपये बेरोज़गारी भत्ता दिया जाये। इसे सुनिश्चित करने के लिए प्रदेश सरकार 'भगतसिंह रोज़गार गारण्टी क़ानून' पारित करे। ज्ञातव्य है कि नौजवान भारत सभा तथा अन्य संगठनों की ओर से राष्ट्रीय स्तर पर भी इस क़ानून को पारित करने की माँग उठायी जा रही है।

ज्ञापन में भर्ती परीक्षाओं में पास उम्मीदवारों को तत्काल नियुक्ति देने, विभिन्न विभागों में ख़ाली पड़े लाखों पदों को भरने की प्रक्रिया जल्द से जल्द शुरू करने, सरकारी विभागों में ठेका प्रथा खत्म करके नियमित नियुक्ति देने, सरकारी स्कूलों में शिक्षकों के सभी पदों को भरने तथा निजी स्कूलों-कॉलेजों, मेडिकल-डेण्टल, इंजीनियरिंग व मैनेजमेण्ट कॉलेजों में फ़ीस, सुविधाएँ और शिक्षकों के वेतन के मानक तय करने के लिए क़ानून बनाने की माँग की गयी है। इसके साथ ही नौकरियों के लिए आवेदन के भारी शुल्कों को ख़त्म करने और साक्षात्कार तथा परीक्षा के लिए यात्रा को निःशुल्क करने, प्राइवेट ट्यूशन और कोचिंग सेण्टरों की मनमानी और लूट को रोकने के लिए नियमावली बनाने तथा प्रदेश में रोज़गार और ख़ाली पदों की स्थिति पर श्वेत पत्र जारी करने की माँग भी की गयी है।

सभा को दिशा छात्र संगठन के अविनाश, संयुक्त कर्मचारी राज्य परिषद के इलाहाबाद ज़िलाध्यक्ष अजय भारती, शिक्षा मित्र एसोसिएशन की उमा देवी तथा गवर्नमेण्ट प्रेस कर्मचारी यूनियन, इलाहाबाद के ए एन सिंह ने भी सम्बोधित किया। इस अवसर पर 'प्रत्यूष' तथा 'दिशा' की साँस्कृतिक टोली द्वारा कई क्रान्तिकारी गीत प्रस्तुत किये गये। सभा स्थल पर भगतसिंह के जीवन एवं विचारों पर आधारित एक पोस्टर प्रदर्शनी और शिक्षा एवं रोज़गार की स्थिति पर पोस्टर श्रृंखला भी प्रदर्शित की गयी थी। सभा का समापन इस संकल्प के साथ हुआ कि आने वाले दिनों में शिक्षा-रोज़गार अधिकार अभियान को और व्यापक रूप देकर अगली बार और ज़ोरदार दस्तक दी जायेगी।

– बिगुल संवाददाता

साढ़े चार साल के मोदी राज की कमाई!
ध्वस्त अर्थव्यवस्था, घपले-घोटाले, महँगाई-बेरोज़गारी, जन-अधिकारों पर डाका और नफ़रत की खेती की ख़ून से सिंचाई

(पेज 1 से आगे)

कीमत गिरते जाने के कारण आयात महँगे हो रहे हैं जिसका सीधा असर महँगाई पर पड़ रहा है। बेरोज़गारी की हालत यह है कि मुट्ठी भर नौकरियों के लिए लाखों लोग पिले पड़ रहे हैं। कारख़ाना इलाक़ों में बेरोज़गार मज़दूरों की भरमार है, जिन्हें काम मिल रहा है वे भी मालिक की मनमानी शर्तों पर काम करने को मजबूर हैं। खाने-पीने, मकान के किरायों, बिजली से लेकर दवा-इलाज और बच्चों की पढ़ाई तक के बढ़ते ख़र्चों ने मज़दूरों ही नहीं, आम मध्यवर्गीय आबादी की भी कमर तोड़कर रख दी है। ऊपर से सरकार उनकी पेंशन और बीमे की रकमों पर भी डाका डाल रही है।

लोग इस खुली डकैती के ख़िलाफ़ आवाज़ न उठायें और जाति-धर्म के नाम पर एक-दूसरे का ख़ून बहाने में भी लगे रहें इसके लिए इस सरकार और आर.एस.एस. के तमाम संगठनों ने समाज में ज़हर फैलाने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। अब चुनाव सिर पर आ जाने और कोई भी जुमला काम नहीं आने के बाद ठगों का यह गिरोह फिर से राम मन्दिर का राग अलापने में जुट गया है और जगह-जगह साम्प्रदायिक तनाव पैदा करने का कोई मौक़ा नहीं गँवा रहा है। केरल में सबरीमाला मन्दिर में महिलाओं के प्रवेश के सुप्रीम कोर्ट के आदेश को लेकर संघी वहाँ उत्पात मचाये हुए हैं। कांग्रेस भी अपने टुच्चे चुनावी स्वार्थों के चलते उसमें कूद गयी है जिसका फ़ायदा भी संघियों को ही मिलेगा। पूर्वी उत्तर प्रदेश में जगह-जगह छोटी-छोटी घटनाओं को साम्प्रदायिक रंग देकर दंगा भड़काने की कोशिश की जा रही है। मध्य प्रदेश और राजस्थान से लेकर बिहार, महाराष्ट्र और कई अन्य राज्यों से भी ऐसी ख़बरें आ रही हैं। संघ, भाजपा, बजरंग दल और विश्व हिन्दू परिषद आदि से जुड़े लोग स्थानीय मनमुटाव और विवादों को भड़काने और धार्मिक रंग देने का काम कर रहे हैं। जिन विवादों को स्थानीय लोग आपस में बातचीत करके सुलझा सकते थे उन्हें जानबूझकर भावनाएँ भड़काने के लिए बढ़ाया जाता है। बड़े पैमाने पर झूठी अफ़वाहों का सहारा लिया जा रहा है और भाजपा के आईटी सेल के लोग व्हाट्सऐप और फ़ेसबुक से जमकर झूठ फैला रहे हैं। अब तो सब जानते हैं कि 2013 में मुज़फ़्फ़रनगर के दंगों में भाजपा के नेताओं और उनसे जुड़े लोगों ने कई साल पुराना पाकिस्तान का वीडियो दिखाकर जनता को भड़काया था। हैदराबाद में तो बजरंग दल के कार्यकर्ता हिन्दू मंदिरों में गोमांस फेंकते हुए पकड़े जा चुके हैं और कर्नाटक में इसी संगठन के लोगों को पाकिस्तान का झंडा फहराते हुए रंगे हाथों पकड़ा गया था।

संघी अब बड़े दंगे भड़काने के बजाय स्थानीय स्तर पर छोटे-छोटे दंगे कराने और साम्प्रदायिक तनाव पैदा करने की रणनीति पर काम कर रहें हैं जिससे राष्ट्रीय स्तर पर ज़्यादा शोर भी न मचे और चुनाव में फसल काटने लायक पर्याप्त नफ़रत भी फैलायी जा सके।

कहते हैं कि रावण अपने दस मुँहों से बोलता था। लेकिन रावण हर मुँह से एक ही बात बोलता था। मगर मोदी सरकार और उसके पीछे खड़े संघ परिवार के अनेक मुँह हैं और सब अलग-अलग बातें एक साथ बोलते रहते हैं। लोगों का ध्यान बँटाने और उन्हें अपने असली इरादों के बारे में पूरी तरह भ्रम में डालने का यह उनका पुराना आज़माया हुआ नुस्ख़ा है। चुनाव के पहले से ही यह खेल जारी था और सत्ता में आने के बाद और भी चतुराई के साथ खेला जा रहा है। एक ओर नरेन्द्र मोदी मेल-मिलाप की और झगड़े मिटाने की बातें करते हैं और अपने आप को उदारवादी और सबको साथ लेकर चलने वाला दिखाने के जुमले उछालते हैं, दूसरी ओर उन्हीं की सरकार और पार्टी के लोग साम्प्रदायिक विष फैलाने और धार्मिक आधार पर ध्रुवीकरण के तरह-तरह के हथकण्डों में लगे हुए हैं। इतिहास, शिक्षा और संस्कृति के पूरे ढाँचे का जैसा भगवाकरण किया गया है और पुलिस, न्यायपालिका, चुनाव आयोग आदि संस्थाओं में जिस तरह से भगवा रंग में लोगों को भरा गया है, वह संघ परिवार के एजेण्डा को आगे बढ़ाने के काम आता रहेगा, चाहे ये सत्ता में रहें या न रहें।

शहरों और गाँवों के मध्यवर्गीय और सम्पन्न लोगों में आधार बढ़ाने के साथ आर.एस.एस. बहुत व्यवस्थित ढंग से शहरों की मज़दूर बस्तियों में पैर पसार रहा है। वे जानते हैं कि आने वाले दिनों में मज़दूर वर्ग ही उसके ख़िलाफ़ सबसे मज़बूती से खड़ा होगा। इसीलिए वे अभी से उसके बीच अपना ज़हरीला प्रचार करने में लगे हैं। किसानी पृष्ठभूमि से उजड़कर आये, निराश-बेहाल असंगठित युवा मज़दूरों और लम्पट सर्वहारा की सामाजिक परतों के बीच फासिस्ट हमेशा से भरती करने में कामयाब रहते हैं। और यही काम वे हमारे यहाँ भी कर रहे हैं। शहरों में बेरोज़गार युवाओं की भरी आबादी उनके झूठे प्रचार का शिकार बन रही है।

मज़दूरों और मेहनतकशों को समझना होगा कि साम्प्रदायिक फासीवाद पूँजीपति वर्ग की सेवा करता है। साम्प्रदायिक फासीवाद की राजनीति झूठा प्रचार या दुष्प्रचार करके सबसे पहले एक नकली दुश्मन को खड़ा करती है ताकि मज़दूरों-मेहनकशों का शोषण करने वाले असली दुश्मन यानी पूँजीपति वर्ग को जनता के ग़ुस्से से बचाया जा सके। ये लोग न सिर्फ़ मज़दूरों के दुश्मन हैं बल्कि ये पूरे समाज के भी दुश्मन हैं। इनका मुक़ाबला करने के लिए मज़दूर वर्ग को न सिर्फ़ अपने वर्ग हितों की रक्षा के लिए संगठित होकर पूँजीपति वर्ग के ख़िलाफ़ सुनियोजित लम्बी लड़ाई की तैयारी करनी होगी, बल्कि साथ ही साथ महँगाई, बेरोज़गारी, महिलाओं की बराबरी तथा जाति और धर्म की कट्टरता के ख़िलाफ़ भी जनता को जागरूक करते हुए अपने जनवादी अधिकारों की लड़ाई को संगठित करना होगा।

उन्हें यह समझना होगा कि औद्योगिक कारपोरेट घराने और वित्त क्षेत्रा के मगरमच्छ नवउदारवाद की नीतियों को बुलेट ट्रेन की रफ़्तार से चलाना चाहते हैं। इसके लिये एक निरंकुश सत्ता की ज़रूरत है। इसीलिए शासक वर्ग नरेन्द्र मोदी को सत्ता में लेकर आये हैं। धार्मिक कट्टरपंथी फासीवाद के वर्तमान उभार का कारण नरेन्द्र मोदी नहीं है। नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में हिन्दुत्ववादी फासीवाद के आधुनिक संस्करण के उभार की जड़ें मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था के असाध्य ढाँचागत संकट में हैं। इस पूँजीवादी संकट का एक क्रान्तिकारी समाधान हो सकता है और वह है, पूँजीवादी उत्पादन और विनिमय की तथा शासन की प्रणाली को ही जड़ से बदल देना। इस समाधान की दिशा में यदि समाज आगे नहीं बढ़ेगा तो पूँजीवादी संकट का फासीवादी समाधान ही सामने आयेगा जिसका अर्थ होगा, जनवादी प्रतिरोध की हर सीमित गुंजाइश को भी समाप्त करके मेहनतकश जनता पर पूँजी की नग्न-निरंकुश तानाशाही स्थापित करना। और फिलहाल यही विकल्प भारतीय पूँजीपति वर्ग ने चुन लिया है।

पूँजीवादी संकट का क्रान्तिकारी समाधान यदि अस्तित्व में नहीं आयेगा, तो लाज़िमी तौर पर उसका फासीवादी समाधान सामने आयेगा। क्रान्ति के लिए यदि मज़दूर वर्ग संगठित नहीं होगा तो जनता फासीवादी बर्बरता का कहर झेलने के लिए अभिशप्त होगी।

जहाँ तक संसदीय सुअरबाड़े में दशकों से लोट लगाते चुनावी वामपंथी भाँड़ों की बात है, उनकी स्थिति सर्वाधिक हास्यास्पद है। ये चुनावी वामपंथी आर.एस.एस.-भाजपा को हिन्दुत्ववादी फासीवादी कहते रहते हैं, पर गैरकांग्रेस-गैरभाजपा विकल्प बनाने की कोशिश में जिन दलों के साथ साम्प्रदायिकता-विरोधी सम्मेलन आदि करते रहते हैं और मोर्चा बनाने की हिकमतें लगाते रहते हैं, उनमें से अधिकांश कभी न कभी सत्ता की सेज पर भाजपा के साथ रात बिता चुके हैं। जब उनसे भाव नहीं मिलता तो तीन प्रमुख संशोधनवादी पार्टियाँ – भाकपा, माकपा, भाकपा (माले-लिबरेशन) आपस में ही मोर्चा बनाकर टीन की तलवार से फासिस्टों का मुक़ाबला करने की रणनीति बनाने लगती हैं। इन चुनावी वामपंथी खोमचेवालों से पूछा जाना चाहिए कि फासीवाद के विरोध की रणनीति के बारे में बीसवीं सदी के इतिहास की और मार्क्सवाद की शिक्षाएँ क्या हैं? क्या फासीवाद का मुक़ाबला सिर्फ़ संसद में बुर्जुआ दलों के साथ संयुक्त मोर्चा बनाकर, या फिर कुछ सम्मेलन और अनुष्ठानिक कार्यक्रम करके किया जा सकता है? अगर ये बात-बहादुर मज़दूर वर्ग की पार्टी होने का दम भरते हैं (और इनके पास सीटू और एटक जैसी बड़ी राष्ट्रीय ट्रेड यूनियनें भी हैं) तो 1990 (आडवानी की रथयात्रा), 1992 (बाबरी मस्जिद ध्वंस), या 2002 (गुजरात नरसंहार) से लेकर अब तक हिन्दुत्ववादी फासीवाद के विरुद्ध व्यापक मेहनतकश जनता की जुझारू लामबन्दी के लिए इन्होंने क्या किया है? संघ परिवार का फासीवाद एक सामाजिक-राजनीतिक आन्दोलन है और मेहनतकश जनता का जुझारू आन्दोलन ही इसका मुक़ाबला कर सकता है। लेकिन इन संशोधनवादी पार्टियों ने तो 70 वर्षों से मज़दूर वर्ग को केवल दुअन्नी-चवन्नी की अर्थवादी लड़ाइयों में उलझाकर उसकी चेतना को भ्रष्ट करने का ही काम किया है। इनकी ट्रेडयूनियनों के भ्रष्ट नौकरशाह नेताओं ने मज़दूरों की जनवादी चेतना को भी कुन्द बनाने का ही काम किया है। मज़दूर वर्ग की राजनीति के नाम पर मज़दूरों के ये ग़द्दार केवल पोलिंग बूथ का ही रास्ता दिखाते रहे हैं। ये नकली वामपंथी, जो हमेशा से पूँजीवादी व्यवस्था की दूसरी रक्षा पंक्ति का काम करते रहे हैं, उनका ''समाजवाद'' आज गल रहे कोढ़ जितना घिनौना हो चुका है। संसदीय राजनीति से और आर्थिक लड़ाइयों से इतर वर्ग संघर्ष की राजनीति को तो ज़माने पहले ये लोग तिलांजलि दे चुके हैं। अब तो उनकी चर्चा तक से इनके कलेजे काँप उठते हैं।

प्रश्न केवल चुनावी राजनीति का है ही नहीं। पूँजीवादी संकट पूरे समाज में (क्रान्तिकारी शक्तियों की प्रभावी उपस्थिति के अभाव में) फासीवादी प्रवृत्तियों और संस्कृति के लिए अनुकूल ज़मीन तैयार कर रहा है। संघ परिवार अपने तमाम अनुषंगी संगठनों के सहारे बहुत व्यवस्थित ढंग से इस ज़मीन पर अपनी फसलें बो रहा है। वह व्यापारियों और शहरी मध्यवर्ग में ही नहीं, आदिवासियों से लेकर शहरी मज़दूरों की बस्तियों तक में पैठकर काम कर रहा है। इसका जवाब एक ही हो सकता है। क्रान्तिकारी शक्तियाँ चाहे जितनी कमज़ोर हों, उन्हें बुनियादी वर्गों, विशेषकर मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार-उद्वेलन, लामबंदी और संगठन के काम को तेज़ करना होगा। जैसाकि भगतसिंह ने कहा था, जनता की वर्गीय चेतना को उन्नत और संगठित करके ही साम्प्रदायिकता का मुक़ाबला किया जा सकता है।

बुर्जुआ मानवतावादी अपीलें और धर्मनिरपेक्षता का राग अलापना कभी भी साम्प्रदायिक फासीवाद का मुक़ाबला नहीं कर पाया है और न ही कर पायेगा। सर्वहारा वर्ग-चेतना की ज़मीन पर खड़ा होकर किया जाने वाला जुझारू और आक्रामक प्रचार ही इन विचारों के असर को तोड़ सकता है। हमें तमाम आर्थिक और सामाजिक दिक़्क़तों की असली जड़ को आम जनता के सामने नंगा करना होगा और साम्प्रदायिक प्रचार के पीछे के असली इरादे पर से सभी नकाब नोच डालने होंगे। साथ ही, ऐसा प्रचार करने वाले व्यक्तियों की असलियत को भी हमें जनता के बीच लाना होगा और बताना होगा कि उनका असली मकसद क्या है। धार्मिक कट्टरपन्थी फासीवाद का मुक़ाबला इसी ज़मीन पर खड़े होकर किया जा सकता है। वर्ग-निरपेक्ष धर्मनिरपेक्षता और 'मज़हब नहीं सिखाता' जैसी शेरो-शायरी का जनता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

हिटलर के प्रचार मन्त्री गोयबल्स ने एक बार कहा था कि यदि किसी झूठ को सौ बार दोहराओ तो वह सच बन जाता है। यही सारी दुनिया के फासिस्टों के प्रचार का मूलमंत्र है। आज मोदी की इस बात के लिए बड़ी तारीफ़ की जाती है कि वह मीडिया का कुशल इस्तेमाल करने में बहुत माहिर है। लेकिन यह तो तमाम फासिस्टों की ख़ूबी होती है। मोदी को ''विकास पुरुष'' के बतौर पेश करने में लगे मीडिया को कभी यह नहीं दिखायी पड़ता कि गुजरात में मोदी के तीन बार के शासन में मज़दूरों और ग़रीबों की क्या हालत हुई। मेहनतकशों को ऐसे झूठे प्रचारों से भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए। उन्हें यह समझ लेना होगा कि तेज़ विकास की राह पर देश को सरपट दौड़ाने के तमाम दावों का मतलब होता है मज़दूरों की लूट-खसोट में और बढ़ोत्तरी। ऐसे 'विकास' के रथ के पहिए हमेशा ही मेहनतकशों और ग़रीबों के ख़ून से लथपथ होते हैं। लेकिन इतिहास इस बात का भी

(पेज 7 पर जारी)

ग़रीबों से जानलेवा वसूली और अमीरों को क़र्ज़ माफ़ी का तोहफ़ा

- अखिल कुमार

"मेरे ऊपर लदे क़र्ज़ के भारी बोझ के कारण मैं आत्महत्या कर रहा हूँ। कीड़ा लगने के कारण मेरे खेत में खड़ी कपास की फ़सल बर्बाद हो गयी। मेरी मौत का ज़िम्मेदार नरेन्द्र मोदी है।" महाराष्ट्र के यवजमाल ज़िले के किसान शंकर भाउराव चायने ने आत्महत्या करने से पहले छोड़े ख़त में ये पंक्तियाँ लिखी थीं। हर साल देश में लाखों किसान आत्महत्या कर लेते हैं जिसका एक बड़ा कारण बैंकों और सूदख़ोरों का क़र्ज़ न चुका पाना है। मज़दूरों की भारी संख्या क़र्ज़ से दबी रहती है और उसकी भारी क़ीमत चुकाती है। किसी भी कारख़ाने के बाहर तनख़्वाह बँटने के दिन सूदख़ोरों के आदमी घूमते रहते हैं कि मज़दूर पैसे लेकर निकले और उससे वसूली की जाये। ज़्यादातर ग़रीबों को तो बैंक से क़र्ज़ की सुविधा मिल ही नहीं पाती और वे मोटा ब्याज़ वसूलने वाले सूदख़ोरों के चंगुल में रहने को मजबूर होते हैं। जिन्हें किसी तरह बैंक से क़र्ज़ मिल भी जाता है, वे अगर समय से पूरा न चुका पायें तो उनकी कुर्की-ज़ब्ती से लेकर गिरफ़्तारी तक हो जाती है। दूसरी तरफ़ अमीरों को न सिर्फ़ बेहद सस्ती दर पर बैंकों से हज़ारों करोड़ के क़र्ज़ मिल जाते हैं, बल्कि इसका भारी हिस्सा वे चुकाते ही नहीं हैं और इसे डकार जाते हैं। ऐसे बड़े क़र्ज़-चोरों के ख़िलाफ़ सरकार भी कोई कार्रवाई नहीं करती, उल्टे उनके क़र्ज़ माफ़ कर दिये जाते हैं।

हाल ही में रिज़र्व बैंक ने खुलासा किया कि पिछले 4 साल में 21 सरकारी बैंकों ने 3 लाख 16 हज़ार करोड़ रुपये के क़र्ज़ माफ़ कर दिये हैं। आप सोच रहे होंगे कि न तो आपका क़र्ज़ माफ़ हुआ है और न ही आपने अपने रिश्तेदार-पड़ोसी की क़र्ज़ माफ़ी के बारे में सुना है, तो फिर भला ये क़र्ज़ माफ़ किसके हुए हैं! ये हमारे-आपके जैसे लोगों के छोटे-मोटे क़र्ज़ नहीं हैं, बल्कि देश के नामी-गिरामी पूँजीपतियों और कॉरपोरेट घरानों के हज़ारों करोड़ रुपये के क़र्ज़ हैं, जिन्हें पूँजीपति कारख़ाने लगाने के नाम पर ले लेते हैं और बाद में करोड़ों का मुनाफ़ा कमाने के बावजूद ख़ुद को दीवालिया दिखाकर पैसा वापस करने से मना कर देते हैं। नीरव मोदी, विजय माल्या, मेहुल चौकसी जैसों का नाम तो आपने सुना ही होगा, जो बैंकों के हज़ारों करोड़ रुपये डकार गये और अब भाजपा सरकार की मेहरबानी से विदेश में रहकर अय्याशी कर रहे हैं। लेकिन ये तो छुटभैया पूँजीपति हैं! असली खिलाड़ी तो अडाणी-अम्बानी जैसे बड़े पूँजीपति हैं, जिनके लिए मोदी समेत सारे मन्त्री-सन्त्री एक टाँग पर खड़े होकर काम कर रहे हैं।

3 लाख 16 हज़ार करोड़ कितनी बड़ी रक़म है, इसका अन्दाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि यह रक़म 2018-19 के बजट में स्वास्थ्य, शिक्षा और सामाजिक सुरक्षा के लिए दी गयी रक़म की दोगुनी है। मतलब, सरकार स्वास्थ्य सेवाओं, शिक्षा, पेंशन, ईएसआई आदि पर कुल जितना ख़र्च करने का दावा कर रही है, उसका दोगुना पैसा कुछ पूँजीपति 4 साल में हज़म कर गये हैं। ज़रा सोचिए, बैंकों के पास ये पैसा कहाँ से आया? क्या बैंकों के पास नोट छापने की मशीन लगी हुई है कि जितना चाहो छापते जाओ और पूँजीपतियों में बाँटते जाओ? नहीं। हम-आप दिनो-रात कड़ी मेहनत करके पाई-पाई जोड़कर जो पैसा बैंकों में जमा करवाते हैं, ये वही पैसा है, जिसे बैंक पूँजीपतियों को लोन के नाम पर खैरात में बाँट रहे हैं। हमारे ही जमा किये गये पैसे में से हमें छोटा-सा क़र्ज़ भी नहीं मिलता है। आँकड़ों के अनुसार मज़दूर और ग़रीब किसान आबादी के ऊपर जो क़र्ज़ है, उसका बड़ा हिस्सा ग़ैर-संस्थागत है। मतलब, ऐसा बहुत कम होता है कि किसी मज़दूर या ग़रीब किसान को बैंक से क़र्ज़ मिल जाये। क़र्ज़ के लिए उन्हें सूदखोरों, दुकानदारों, धनी किसानों आदि पर ही निर्भर रहना पड़ता है, जो उनसे मूलधन पर बहुत अधिक ब्याज वसूलते हैं। अगर बैंकों से क़र्ज़ मिल भी जाये तो बैंक क़र्ज़ वसूलने के लिए सिर पर चढ़े रहते हैं। अपना क़र्ज़ वसूलने के लिए घर, ज़मीन आदि की नीलामी तक करवा डालते हैं। एक छोटे-से क़र्ज़ के लिए भी बैंक कर्मचारियों के हाथों ग़रीब आदमी को बेइज़्ज़त होना पड़ता है। इसी का नतीजा है कि मज़दूरों और ग़रीब किसानों में ख़ुदकुशी करने वालों की संख्या आसमान छू रही है। लेकिन, क्या ऐसा ही बैंक पूँजीपतियों के साथ भी करते हैं? नहीं। पूँजीपति क़र्ज़ की राशि और उससे कमाया हुआ मुनाफ़ा हड़प कर बैंकों से "दया की गुहार" लगाता है। और, इतने "दीन-हीन" पूँजीपति को देखकर बैंकों का दिल पसीज जाता है। बैंक तुरन्त उसके क़र्ज़ को "न वसूले जा सकने वाले क़र्ज़" की सूची (एनपीए) में डाल देते हैं। कई बार तो बैंकों को कुछ ज़्यादा ही दया आ जाती है और वे पूँजीपति को पहले वाला क़र्ज़ वापस करने में "मदद" करने के लिए हज़ारों करोड़ का क़र्ज़ फिर से दे देते हैं!

आँकड़े भी इसी हालत की गवाही दे रहे हैं। अप्रैल 2014 से लेकर अप्रैल 2018 तक सिर्फ़ 44,900 करोड़ रुपये की वसूली की गयी है और इसकी 7 गुना राशि माफ़ कर दी गयी है। 2014-15 में जो एनपीए 4.62 फ़ीसदी था, वह दिसम्बर 2017 में बढ़कर 10.41 फ़ीसदी हो गया, मतलब 7 लाख 70 हज़ार करोड़। इतनी बड़ी मात्रा में क़र्ज़ डूबने के चलते बैंकों की भी हालत पतली हो गयी है। इसकी भरपाई भी आम जनता से की जा रही है। पिछले दिनों केवल भारतीय स्टेट बैंक ने खाते में कम रक़म रखने के जुर्माने के तौर पर अपने ग्राहकों से 3000 करोड़ रुपये वसूल लिये! कोई भी समझ सकता है कि जो लोग खाते में न्यूनतम रक़म भी नहीं रख पाते हैं, वे कौन हैं। सारे ही बैंक और भी तरह-तरह के शुल्क लगाकर लोगों की जेब काटने में लगे हुए हैं।

आम जनता को दोनों तरफ़ से लूटा जा रहा है। एक तरफ़ जहाँ बैंकों में जमा उनकी मेहनत की कमाई को पूँजीपतियों को खैरात में बाँटा जा रहा है, वहीं दूसरी ओर क़र्ज़ दे-देकर दिवालिया हुए बैंकों को भाजपा सरकार "बेलआउट पैकेज" के नाम पर जनता से वसूली गयी टैक्स की राशि में से लाखों करोड़ रुपये देने की तैयारी कर रही है। इससे पहले भी सरकार "बेलआउट पैकेज" के नाम पर 88,000 करोड़ रुपये बैंकों को दे चुकी है। ये सारा पैसा मोदी ने चाय बेचकर नहीं कमाया है, जिसे वह अपने आकाओं को लुटा रहा है। ये मेहनतकश जनता की गाढ़ी कमाई का पैसा है जिसे तरह-तरह के टैक्सों के रूप में हमसे वसूला जाता है। ये पैसा जनकल्याण के नाम पर वसूला जाता है, लेकिन असल में कल्याण इससे पूँजीपतियों का किया जा रहा है। इस पैसे से लोगों के लिए आधुनिक सुविधाओं से लैस अच्छे अस्पताल बन सकते थे और निःशुल्क व अच्छे स्कूल-कॉलेज खुल सकते थे, लेकिन हो उल्टा रहा है। सरकार पैसे की कमी का रोना रोकर रही-सही सुविधाएँ भी छीन रही है।

मामला सिर्फ़ सरकारी बैंकों को "बेलआउट" करने तक ही सीमित नहीं है, बल्कि अब 91,000 करोड़ रुपये के क़र्ज़ में डूबी इंफ्रास्ट्रक्चर लीजिंग एण्ड फाइनेंशियल सर्विसेज लिमिटेड (आईएल एण्ड एफ़एस) नाम की निजी कम्पनी में भी हज़ारों करोड़ रुपये झोंककर उसे भी "बेलआउट" करने की तैयारी हो रही है।

आमतौर पर यह समझा जाता है कि बैंक जनता के पैसों की हिफ़ाज़त करते हैं। यह बहुत बड़ा भ्रम है। बैंक भी कारोबारी हैं, जो पैसों के लेन-देन के काम में पैसा बनाते हैं। वे इस पूँजीवादी व्यवस्था के मज़बूत खम्भे हैं। नोटबन्दी से काला धन वापस लाने की बात तो जुमला ही थी, जो अब साबित भी हो चुकी है। असल मक़सद तो था जनता की मेहनत की कमाई को बैंकों में जमा करवाना ताकि क़र्ज़ दे-देकर दिवालिया होने की क़गार पर पहुँचे बैंकों को फिर से पैसों से लैस किया जा सके।

ध्वस्त अर्थव्यवस्था, घपले-घोटाले, महँगाई-बेरोज़गारी, जन-अधिकारों पर डाका और नफ़रत की खेती की ख़ून से सिंचाई

(पेज 6 से आगे)

गवाह है कि हर फासिस्ट तानाशाह को धूल में मिलाने का काम भी मज़दूर वर्ग की लौह मुट्ठी ने ही किया है!

हमें फासीवाद को विचारधारा और राजनीति में तो परास्त करना ही होगा, लेकिन साथ ही हमें उन्हें सड़क पर भी परास्त करना होगा। इसके लिए हमें मज़दूरों और नौजवानों के लड़ाकू और जुझारू संगठन बनाने होंगे। ग़ौरतलब है कि जर्मनी के कम्युनिस्टों ने फासीवादी गिरोहों से निपटने के लिए कारख़ाना ब्रिगेडें खड़ी की थीं, जो सड़क पर फासीवादी गुण्डों के हमलों का जवाब देने और उन्हें सबक सिखाने का काम कारगर तरीके से करती थीं। बाद में यह प्रयोग आगे नहीं बढ़ सका और फासीवादियों ने जर्मनी में अपनी सत्ता क़ायम कर ली। मज़दूर वर्ग का बड़ा हिस्सा वहाँ तब भी सामाजिक जनवादियों के प्रभाव में ही था और क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों की पकड़ उतनी मज़बूत नहीं हो पायी थी। लेकिन उस छोटे-से प्रयोग ने दिखा दिया था कि फासीवादी गुण्डों से सड़क पर ही निपटा जा सकता है। उनके साथ तर्क करने और वाद-विवाद करने की कोई गुंजाइश नहीं होती है। साम्प्रदायिक दंगों को रोकने और फासीवादी हमलों को रोकने के लिए ऐसे ही दस्ते छात्र और युवा मोर्चे पर भी बनाये जाने चाहिए। छात्रों-युवाओं को ऐसे हमलों से निपटने के लिए आत्मरक्षा और जनरक्षा हेतु शारीरिक प्रशिक्षण और मार्शल आर्ट्स का प्रशिक्षण देने का काम भी क्रान्तिकारी छात्र-युवा संगठनों को करना चाहिए। उन्हें स्पोर्ट्स क्लब, जिम, मनोरंजन क्लब आदि जैसी संस्थाएँ खड़ी करनी चाहिए, जहाँ राजनीतिक शिक्षण-प्रशिक्षण और तार्किकता व वैज्ञानिकता के प्रसार का काम भी किया जाये।

हम एक बार फिर मेहनतकश साथियों और आम नागरिकों से कहना चाहते हैं कि साम्प्रदायिक फासीवादियों के भड़काऊ बयानों से अपने ख़ून में उबाल लाने से पहले ख़ुद से पूछियेः क्या ऐसे दंगों में कभी सिंघल, तोगड़िया, ओवैसी, आज़म खाँ, मुलायमसिंह यादव, राज ठाकरे, आडवाणी या योगी-मोदी जैसे लोग मरते हैं? क्या कभी उनके बच्चों का क़त्ल होता है? क्या कभी उनके घर जलते हैं? हमारे लोगों की बेनाम लाशें सड़कों पर पड़ी धू-धू जलतीं हैं। सारे के सारे धार्मिक कट्टरपन्थी तो भड़काऊ बयान देकर अपनी ज़ेड श्रेणी की सुरक्षा, पुलिस और गाड़ियों के रेले के साथ अपने महलों में वापस लौट जाते हैं। और हम उनके झाँसे में आकर अपने ही वर्ग भाइयों से लड़ते हैं। इसलिए, धार्मिक जुनूनी प्रचार की झोंक में बहने के बजाय इसकी असलियत को समझिये और अपनी ज़िन्दगी को बदलने की असली लड़ाई में लगने के बारे में सोचिये। सभी मेहनतकशों की एकता इसकी पहली शर्त है!

लोगों को आपस में लड़ने से रोकने के लिए वर्ग-चेतना की ज़रूरत है

''लोगों को आपस में लड़ने से रोकने के लिए वर्ग-चेतना की ज़रूरत है। ग़रीब मेहनतकश व किसानों को स्पष्ट समझा देना चाहिए कि तुम्हारे असली दुश्मन पूँजीपति हैं, इसलिए तुम्हें इनके हथकण्डों से बचकर रहना चाहिए और इनके हत्थे चढ़ कुछ न करना चाहिए। संसार के सभी गरीबों के, चाहे वे किसी भी जाति, रंग, धर्म या राष्ट्र के हों, अधिकार एक ही हैं। तुम्हारी भलाई इसी में है कि तुम धर्म, रंग, नस्ल और राष्ट्रीयता व देश के भेदभाव मिटाकर एकजुट हो जाओ और सरकार की ताक़त अपने हाथ में लेने का यत्न करो। इन यत्नों में तुम्हारा नुक़सान कुछ नहीं होगा, इससे किसी दिन तुम्हारी ज़ंजीरें कट जायेंगी और तुम्हें आर्थिक स्वतन्त्रता मिलेगी।''

''इन दंगों में वैसे तो बड़े निराशाजनक समाचार सुनने में आते हैं, लेकिन कलकत्ते के दंगों में एक बात बहुत ख़ुशी की सुनने में आयी। वह यह कि वहाँ दंगों में ट्रेड यूनियनों के मज़दूरों ने हिस्सा नहीं लिया और न ही वे परस्पर गुत्थमगुत्था ही हुए, वरन सभी हिन्दू-मुसलमान बड़े प्रेम से कारख़ानों आदि में उठते-बैठते और दंगे रोकने के भी यत्न करते रहे। यह इसलिए कि उनमें वर्ग-चेतना थी और वे अपने वर्गहित को अच्छी तरह पहचानते थे। वर्ग-चेतना का यही सुन्दर रास्ता है, जो साम्प्रदायिक दंगे रोक सकता है।''

''1914-15 के शहीदों ने धर्म को राजनीति से अलग कर दिया था। वे समझते थे कि धर्म व्यक्ति का व्यक्तिगत मामला है, इसमें दूसरे का कोई दखल नहीं। न ही इसे राजनीति में घुसाना चाहिए, क्योंकि यह सरबत को मिलकर एक जगह काम नहीं करने देता। इसीलिए ग़दर पार्टी-जैसे आन्दोलन एकजुट व एकजान रहे, जिसमें सिख बढ़-चढ़कर फाँसियों पर चढ़े और हिन्दू-मुसलमान भी पीछे नहीं रहे।''

(भगतसिंह, 'साम्प्रदायिक दंगे और उनका इलाज' लेख के अंश, 'किरती' पत्रिका के जून 1928 अंक में प्रकाशित)

सनातन संस्था की असली जन्मकुण्डली
बम धमाकों से महाराष्ट्र को कौन दहलाना चाहता था?

– नितेश

पिछले कुछ वर्षों के दौरान अनेक बम धमाकों और दाभोलकर, पानसरे, कलबुर्गी और गौरी लंकेश की हत्या में शामिल होने के सबूतों सहित इसके कार्यकर्ताओं की गिरफ़्तारी के बावजूद 'सनातन संस्था' को कौन बचा रहा है और क्यों?

पुणे पुलिस ने वाम विचारधारा से सम्बन्ध रखने वाले पाँच जाने-माने बुद्धिजीवियों और मानवाधिकार कार्यकर्ताओं को भीमा कोरेगाँव मामले में हिंसा भड़काने के आरोप में गिरफ़्तार किया है। मीडिया के ज़रिये ऐसी अफ़वाहें फैलायी जा रही हैं कि ये पाँचों लोग नरेन्द्र मोदी की हत्या की साज़िश से जुड़े हुए हैं। हालाँकि पुलिस ने अदालत में इस बारे में कुछ भी नहीं कहा! असलियत यह है कि ये सभी लोग सरकार की नीतियों के आलोचक हैं और मज़दूरों, किसानों और आदिवासियों पर होने वाले ज़ुल्मों के विरुद्ध आवाज़ उठाते रहे हैं। देशव्यापी विरोध और अनेक जनपक्षधर बुद्धिजीवियों द्वारा सुप्रीम कोर्ट में याचिका दायर करने के बाद सुप्रीम कोर्ट ने इनको जेल न भेजकर अगली सुनवाई 6 सितम्बर 2018 तक घर पर नज़रबन्द रखने का निर्देश दिया है। दूसरी ओर भीमा-कोरेगाँव की घटना में हिंसा भड़काने के आरोप में हिन्दुत्ववादी संगठनों से जुड़े मिलिन्द एकबोटे और सम्भाजी भिड़े पर एफ़आईआर में नाम होने के बावजूद कार्रवाई नहीं की गयी है। एकबोटे को गिरफ़्तार करने के बाद ज़मानत पर छोड़ दिया गया और भिड़े को अभी तक गिरफ़्तार ही नहीं किया गया है।

देश ही नहीं, दुनियाभर में जाने-माने बुद्धिजीवियों की गिरफ़्तारी का यह पूरा मामला जिस नाटकीय ढंग से रचा गया है, उसके पीछे एक ऐसी सच्चाई है, जिसे दबाने की कोशिश की जा रही है।

दरअसल 9 अगस्त को मुम्बई एटीएस (आतंकवाद निरोधक दस्ता) ने सनातन संस्था से सम्बन्ध रखने वाले वैभव राउत, जो हिन्दू गोवंश रक्षा समिति का कार्यकर्ता है, के घर और दुकान पर छापेमारी की। इस छापेमारी में एटीएस को 8 देशी बम, 10 पिस्तौलें, एक एयरगन, एक कट्टा, 6 मैगज़ीन और काफ़ी मात्रा में बारूद और डेटोनेटर बरामद हुआ। छापे की यह कार्रवाई वरिष्ठ पत्रकार गौरी लंकेश की हत्या के सन्दर्भ में एसआईटी द्वारा चल रही जाँच के सिलसिले में की गयी। एसआईटी ने अमोल काले नाम के एक व्यक्ति को जून 2018 में गौरी लंकेश की हत्या के मास्टरमाइण्ड के तौर पर गिरफ़्तार किया था। उसने पूछताछ के दौरान अपने संगठन से जुड़े 10 अन्य लोगों के नाम बताये, जिनमें वैभव राउत का नाम भी शामिल था।

इसके बाद तीन अन्य लोग भी गिरफ़्तार हुए। 'शिवप्रतिष्ठान हिन्दुस्तान' नामक संस्था का सदस्य सुधन्वा गोन्धेलकर गिरफ़्तार हुआ। यह वही शिवप्रतिष्ठान हिन्दुस्तान है जिस पर भीमा कोरेगाँव में दलितों के ऊपर हमला कराने के आरोप लगे थे। गिरफ़्तार किये गये दूसरे व्यक्ति का नाम शरद कालस्कर है। शरद कालस्कर ने पूछताछ में बताया कि महाराष्ट्र के तर्कवादी लेखक नरेन्द्र दाभोलकर की हत्या में वह भी शामिल था, उसने सचिन अन्दुरे नाम के एक शख्स के साथ मिलकर नरेन्द्र दाभोलकर पर गोली चलायी थी। सचिन अन्दुरे को एटीएस ने गिरफ़्तार करके नरेन्द्र दाभोलकर की हत्या की जाँच कर रही सीबीआई को सौंप दिया है। सीबीआई का कहना है कि नरेन्द्र दाभोलकर की हत्या का मास्टरमाइण्ड डॉक्टर वीरेन्द्र तावड़े था, जिसके साथ सचिन अन्दुरे भी नरेन्द्र दाभोलकर की हत्या में शामिल था। सचिन अन्दुरे को महाराष्ट्र व कर्नाटक में हथियार चलाने की ट्रेनिंग मिली थी। वीरेन्द्र तावड़े को सीबीआई पहले ही गिरफ़्तार कर चुकी है और 2016 में उस पर चार्जशीट भी दाख़िल की जा चुकी है। वीरेन्द्र तावड़े भी सनातन संस्था का ही सदस्य बताया जाता है। कर्नाटक एसआईटी ने जिस शख्स को गौरी लंकेश की हत्या के सन्दर्भ में गिरफ़्तार किया है, उसका भी सम्बन्ध नरेन्द्र दाभोलकर की हत्या में सामने आ रहा है। दाभोलकर को मारने की साज़िश 2009 से चल रही थी, जो कि 20 अगस्त 2013 को अंजाम दी गयी।

तीसरा गिरफ़्तार शख्स श्रीकान्त पांगरकर है जो कि शिवसेना का पूर्व पार्षद है। गिरफ़्तार लोगों ने पूछताछ के दौरान यह बताया कि श्रीकान्त ने विस्फोटक जमा करने और जोड़ने में उनकी मदद की। शिवसेना का कहना है कि पांगरकर ने बहुत पहले ही पार्टी छोड़ दी थी। शिवसेना के कोटे से महाराष्ट्र सरकार में मन्त्री बने अंजुन खोटकर ने माना कि कई नेता श्रीकान्त के सम्पर्क में थे और उसने उन नेताओं के सनातन संस्था से सम्बन्ध और विस्फोट के प्लान के बारे में कुछ बताया था।

इन चारों से पूछताछ में यह सामने आया कि ये लोग महाराष्ट्र के छह शहरों मुम्बई, पुणे के सनबर्न फ़ेस्टिवल, सतारा, सांगली, सोलापुर आदि जगहों पर बम विस्फोट करने वाले थे। इसका उद्देश्य यही था कि इसमें मुस्लिमों का नाम आये और उनके प्रति नफ़रत पैदा की जा सके। इन्होंने कुछ पत्रकारों और लेखकों पर हमले की भी योजना बनायी थी। साथ ही इन्होंने कहा कि पद्मावत फ़िल्म के रिलीज के समय इन्होंने मुम्बई के कुछ सिनेमाघरों के सामने पेट्रोल बम फेंके थे।

हमेशा की तरह सनातन संस्था ने इन लोगों से अपना कोई सम्बन्ध होने से इंकार किया है। सनातन संस्था ने एक प्रेस नोट जारी करके कहा है कि वैभव राउत सनातन संस्था का साधक नहीं था, वह हिन्दू जनजागृति समिति का कार्यकर्ता था और कई महीने से कार्यरत नहीं था। फिर भी संस्था के वकील ने कहा कि वे उनको पूरी क़ानूनी मदद प्रदान करेंगे।

यह पहली बार नहीं है जब सनातन संस्था से जुड़े लोगों को आतंकवादी गतिविधियों में लिप्त पाया गया है। हम संस्था के इतिहास पर नज़र डालेंगे तो यह बात साफ़ हो जायेगी कि यह एक हिन्दू उग्र कट्टरपन्थी संगठन है और यह भी साफ़ हो जायेगा कि आख़िर क्यों ये लोग ऐसे आतंकवादी कृत्यों को अंजाम देते हैं।

सनातन संस्था सबसे पहले 1991 में एक धार्मिक ट्रस्ट के रूप में हिप्नोथेरेपिस्ट जयन्त आठवले द्वारा स्थापित हुई। 23 मार्च 1999 को इसका नाम सनातन संस्था रखा गया। अपने को अध्यात्म और धर्म जागरण की संस्था बताने वाली यह संस्था अपनी धार्मिक कट्टरता, धमाकों और हत्या के षड्यन्त्रों के लिए कुख्यात है। आइए, एक नज़र इनके कारनामों पर डालते हैं।

1. 2007 के मुम्बई के वाशी, पनवेल, ठाणे बम धमाके :-

4 जून 2008 को ठाणे के गडकरी रंगायतन थिएटर की पार्किंग में एक बम धमाका हुआ जिसमें 7 लोग घायल हुए। उस दिन रंगायतन में मराठी नाटक 'आम्ही पचपुते' का मंचन हो रहा था। सनातन संस्था का कहना था कि यह नाटक हिन्दू धर्म के ख़िलाफ़ है।

इसके बाद वाशी और पनवेल के थिएटर में 'जोधा अकबर' फ़िल्म के रिलीज के समय दो छोटे धमाके किये गये थे। इन धमाकों के आरोप में सनातन संस्था के 6 साधक गिरफ़्तार हुए थे। सनातन संस्था इस समय भी दावा करती रही कि उनके कार्यकर्ताओं को झूठे केस में फँसाया गया है। इनमें से दो साधकों विक्रम भावे और रमेश गडकरी पर आरोप सिद्ध हुए और उनको 2011 में 10-10 साल की सज़ा सुनायी गयी।

3. 2009 का गोवा मर्गाँव धमाका :-

2009 में गोवा के मर्गाँव में दीवाली के उत्सव में बम धमाके करने जा रहे सनातन संस्था के दो कार्यकर्ताओं मलगौन्दा पाटिल और योगेश नाइक की उस वक़्त मौत हो गयी, जब उनके स्कूटर में रखा बम समय से पहले फट गया। इसके कुछ देर बाद पुलिस ने एक अन्य प्लाण्टेड बम वेस्को के पोर्ट टाउन के पास से ज़ब्त किया। इस समय सनातन संस्था ने माना था कि पाटिल उनका साधक था।

अक्टूबर 2009 में सनातन संस्था के ही चार साधकों, जिनमें विक्रम भावे भी शामिल था, के घर छापेमारी में दो रिवाल्वर, भारी मात्रा में विस्फोटक पाउडर, 20 डेटोनेटर, 19 ज़िलेटिन स्टिक, टाइमर, रिमोट कण्ट्रोल आदि ज़ब्त किये गये थे। इस मामले में सनातन संस्था के तीन अन्य साधक सारंग अकोलकर, जयप्रकाश और रुद्र पाटिल अभी तक फ़रार हैं, जिनके ख़िलाफ़ रेड कॉर्नर नोटिस भी जारी किया जा चुका है।

4. 2013 में नरेन्द्र दाभोलकर की हत्या :-

20 अगस्त 2013 को महाराष्ट्र के प्रसिद्ध तर्कवादी और अन्धश्रद्धा निर्मूलन समिति के अध्यक्ष नरेन्द्र दाभोलकर सुबह की सैर पर निकले थे जब उनको मोटरसाइकिल सवार लोगों ने गोली मार दी। इस घटना ने महाराष्ट्र को हिलाकर रख दिया। लोगों के काफ़ी विरोध के बाद सीबीआई को इसकी जाँच सौंपी गयी। सीबीआई ने जून 2016 में हिन्दू जनजागृति समिति के कार्यकर्ता वीरेन्द्र तावड़े को इस हत्या के सन्दर्भ में गिरफ़्तार किया। सीबीआई को तावड़े और गोवा ब्लास्ट के भगोड़े आरोपी सारंग अकोलकर के बीच ईमेल से बातचीत के प्रमाण भी मिले थे, जिसमें हथियार जुटाने और हथियार बनाने का कारख़ाना स्थापित करने पर बातचीत हुई थी। इस मामले में अब दूसरा आरोपी सचिन अन्दुरे भी पकड़ा जा चुका है। इन सभी के सम्बन्ध सनातन संस्था से रहे हैं।

5. 2015 में गोविन्द पानसरे की हत्या :-

16 फ़रवरी 2015 को सुबह अपनी पत्नी के साथ टहलने जाते हुए बुजुर्ग वामपन्थी नेता और लेखक गोविन्द पानसरे पर दो मोटरसाइकिल सवारों ने गोलियाँ चलायीं। 20 फ़रवरी को गोविन्द पानसरे की मृत्यु हो गयी। इस हत्या ने एक बार फिर पूरे देश के लोगों में आक्रोश पैदा कर दिया। धार्मिक कट्टरता के ख़िलाफ़ लिखने और बोलने वालों पर हमले बढ़ रहे थे और सरकार ज़ुबानी जमाख़र्च के अलावा कुछ नहीं कर रही थी। पानसरे की हत्या की जाँच के लिए बाद में एसआईटी का गठन किया गया। एसआईटी की चार्जशीट के अनुसार पानसरे सनातन संस्था की नज़र में थे, क्योंकि वह धार्मिक कट्टरता के विरोधी थे। हिन्दू जनजागृति समिति उनको एक "दुर्जन" मानती थी जो उनके हिन्दू राष्ट्र की स्थापना में बाधक बन रहे थे। 30 दिसम्बर 2014 को पानसरे ने यह घोषणा की थी कि वह सनातन संस्था की धार्मिक कट्टरता के विरोध में महाराष्ट्र-भर में 150 सभाएँ करेंगे। इस घोषणा के डेढ़ महीने बाद उनकी हत्या कर दी गयी।

इस मामले में एसआईटी ने समीर गायकवाड़ और वीरेन्द्र तावड़े को गिरफ़्तार किया था। सीबीआई के अनुसार वीरेन्द्र तावड़े वही व्यक्ति है जिसने नरेन्द्र दाभोलकर हत्याकाण्ड में मास्टरमाइण्ड की भूमिका निभायी थी और सारंग अकोलकर और सचिन अन्दुरे के साथ मिलकर दाभोलकर की हत्या की थी।

6. 2015 में एम एम कलबुर्गी की हत्या :-

प्रसिद्ध कन्नड़ तर्कवादी और लेखक प्रोफ़ेसर एम एम कलबुर्गी की 30 अगस्त 2015 को दो मोटरसाइकिल सवारों ने घर पर गोली मारकर हत्या कर दी। प्रोफ़ेसर कलबुर्गी साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त लेखक और तर्कवादी थे, जिनको लम्बे समय से धार्मिक कट्टरपन्थियों द्वारा धमकियाँ मिल रही थीं। इस हत्या के विरोध में पूरे देश में लेखकों ने अपना साहित्य अकादमी पुरस्कार व अन्य पुरस्कार लौटाना शुरू कर दिया। इस हत्या की जाँच सीआईडी को दी गयी। इस हत्या में भी सनातन संस्था पर ही सवाल उठा था। फिर भी अभी तक सीआईडी इस मामले में किसी ठोस सूत्र का पता नहीं लगा पायी है।

7. 2017 में गौरी लंकेश की हत्या :-

बेंगलोर में वरिष्ठ पत्रकार गौरी लंकेश की हत्या भी बिल्कुल उसी तरीक़े से की गयी, जैसे बाक़ी 3 तर्कवादी लेखकों की हुई थी। इस मामले में हाल ही में सीबीआई ने कोर्ट से कहा है कि उसने नरेन्द्र दाभोलकर और गौरी लंकेश की हत्या के बीच कड़ी का पता लगा लिया है। सचिन अन्दुरे ने पूछताछ में बताया कि गौरी लंकेश की हत्या के एक गिरफ़्तार आरोपी ने उसे 7.65 एमएम की देशी रिवाल्वर और तीन गोलियाँ दी थीं। अगर सही जाँच हुई तो जल्दी ही इसमें भी सच्चाई सामने आ जायेगी।

इतनी आतंकवादी घटनाओं को अंजाम देने वाली इस संस्था को प्रतिबन्धित करने की माँग लगातार उठती रही है, पर सत्ता में बैठे लोगों ने लगातार किसी-न-किसी बहाने से सनातन संस्था को बचाने का प्रयास ही किया है। कई जानकार लोगों का कहना है कि सनातन संस्था अपने दम पर लगातार ऐसी कार्रवाइयों को अंजाम नहीं देती रह सकती है। उसके पीछे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का हाथ है और केन्द्र तथा राज्यों में भाजपा की सरकारें उसे बचाती रही हैं। हालाँकि यह भी सच है कि कांग्रेस की सरकार भी ऐसे मामलों में कार्रवाई नहीं करने की दोषी है।

2011 में महाराष्ट्र सरकार ने केन्द्र सरकार को एक रिपोर्ट सौंपकर सनातन संस्था पर प्रतिबन्ध लगाने की माँग की। तत्कालीन कांग्रेस सरकार ने इसको यह कहकर ठुकरा दिया कि अभी इसके लिए पर्याप्त प्रमाण नहीं हैं।

2017 में फिर महाराष्ट्र सरकार ने इस संस्था को प्रतिबन्धित करने का प्रस्ताव भेजा, पर भाजपा सरकार ने कांग्रेस की वही पुरानी कहानी दोहरा दी।

इस बात में कोई सन्देह नहीं कि सनातन संस्था एक कट्टरपन्थी संगठन है। बीबीसी हिन्दी ने भी इस पर जारी अपनी रिपोर्ट में इसके काले कारनामों को उजागर किया है। कुछ तथ्य इस बात की ओर स्पष्ट इशारा करते हैं कि संस्था का इन तमाम हत्याओं और धमाकों और उनमें शामिल आतंकवादियों से

(पेज 9 पर जारी)

सनातन संस्था की असली जन्मकुण्डली
बम धमाकों से महाराष्ट्र को कौन दहलाना चाहता था?

(पेज 8 से आगे)

गहरा सम्बन्ध है :-

1. सनातन संस्था अपने आपको एक आध्यात्मिक संगठन बताती है, पर इसका मुख्य लक्ष्य शुद्ध राजनीतिक है यानी हिन्दू राष्ट्र की स्थापना करना। संस्थापक जयन्त आठवले के अनुसार सनातन संस्था का हिन्दू राष्ट्र कैसा होगा इसकी झलक देखिए – "जनप्रतिनिधि या राजनेता नहीं बल्कि केवल सन्त ही हिन्दू राष्ट्र की स्थापना करने में सक्षम हैं। हिन्दू राष्ट्र में कोई चुनाव या जनप्रतिनिधि नहीं होगा।"

ज़ाहिर है कि सनातन संस्था किसी जनवादी व्यवस्था या संविधान में विश्वास नहीं रखती।

सनातन संस्था पर कई विशेष रिपोर्ट तैयार करने वाली पत्रकार अलका धुपकर बीबीसी से बातचीत में कहती हैं – "सनातन संस्था की विचारधारा कट्टर दक्षिणपन्थी है। वो हिंसा की वकालत करते हैं, उनका मक़सद हिन्दू राष्ट्र की स्थापना करना है। इस लक्ष्य के रास्ते में आनेवाले का सफ़ाया करना मंज़िल तक पहुँचने की उनकी नीति का हिस्सा है।"

2. डॉक्टर आठवले की पत्रिका 'क्षत्रधर्म साधना' में लिखा है कि पाँच फ़ीसद अनुयायियों को हथियार की ट्रेनिंग देने की आवश्यकता होगी। भगवान सही समय पर हथियार उपलब्ध करायेंगे। सनातन संस्था की नज़र में तर्कवादी यानी वैज्ञानिक सोच का व्यक्ति, मुसलमान, ईसाई और हर इंसान जो हिन्दू विरोधी है, वह "दुर्जन" है। साथ ही एक लेख में ये भी ज़िक्र आता है कि "शैतानी ताक़तों के ख़िलाफ़ क़दम उठाने होंगे।"

'क्षत्रधर्म साधना' में ये भी लिखा है कि - "इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता कि किसी को गोली चलानी आती है या नहीं, जब वो भगवान का नाम लेकर गोली चलाता है तो ईश्वर की शक्ति से गोली निश्चित रूप से सही निशाने पर लगेगी।"

इन कुछ ही पंक्तियों से समझा जा सकता है कि नरेन्द्र दाभोलकर, गोविन्द पानसरे या अन्य लोग मौत के घाट क्यों उतार दिये गये।

3. तमाम दोगले फासिस्टों की तरह सनातन संस्था पकड़े जाने वाले अपने लोगों से लगातार अपना सम्बन्ध नकारती रहती है, पर दूसरी तरफ़ इन अपराधियों को पूरी क़ानूनी मदद मुहैया कराती है, दर्जनों वकील और पूरी आर्थिक मदद दी जाती है। ये पैसे शहरों में रहने वाले हज़ारों नौकरीशुदा लोगों और व्यापारियों से धर्म रक्षा के नाम पर जुटाये जाते हैं। इसकी वेबसाइट पर लिखा है - "धर्मदान करो! धर्मपुण्य पाओ!" इसका अप्रत्यक्ष मतलब यही हुआ कि बम विस्फ़ोटों और हत्याओं के लिए दान देने से पुण्य बढ़ता है। ये बार-बार इस बात को नकारते हैं कि गिरफ़्तार पाँचों लोग उनसे सम्बन्धित नहीं हैं और हिन्दू जनजागृति समिति और सनातन संस्था में कोई सम्बन्ध नहीं है, लेकिन दूसरी तरफ़ ठाणे में इन कार्यकर्ताओं की गिरफ़्तारी के बाद विरोध रैली निकाली जाती है और उसमें सनातन संस्था और हिन्दू जनजागृति समिति दोनों के बैनर लिए हुए लोग दिखते हैं। वैभव राउत की गिरफ़्तारी के विरोध में मुम्बई के नालासोपारा में निकाली गयी जनाक्रोश रैली में सनातन संस्था और हिन्दू जनजागृति समिति दोनों हिस्सा लेते हैं। हिन्दू जनजागृति समिति ने ही इसको आयोजित किया था और हिन्दू जनजागृति समिति और गोवंश रक्षा समिति के कार्यकर्ता दिनेश पाटिल ने इसकी अगुआई की थी। सनातन संस्था इस जनाक्रोश रैली की ख़बर अपनी वेबसाइट पर डालते हुए लिखती है - "अगर निर्दोष वैभव राउत को छोड़ा नहीं जाता तो हमारा आक्रोश और बढ़ेगा - आयोजकों की पुलिस और सरकार को चेतावनी।" कोई भी समझ सकता है कि सनातन संस्था यूँही इतना ज़ोर नहीं लगा रही।

सनातन संस्था धार्मिक कट्टर होने के साथ-साथ घोर आधुनिकता विरोधी और विज्ञान विरोधी भी है। धर्म को वैज्ञानिक तरीक़े से समझाने के अपने दावे के बावजूद संस्था घोर अतार्किकता और अवैज्ञानिकता का गढ़ है। सनातन संस्था की वेबसाइट पर कई साधकों के हवाले से कई वाहियात दावे किये गये हैं। कुछ साधकों का दावा है कि -

- उन्होंने डॉ. आठवले के इर्दगिर्द एक आभामण्डल देखा है।

- जब वो आसपास होते हैं तो एक अलग तरह की ख़ुशबू आती है।

- उनका चेहरा भगवान श्रीकृष्ण के समान दिखता है।

कई लोग ऐसे आरोप भी लगाते हैं कि डॉ. आठवले सम्मोहन के ज़रिये अपने अनुयायियों के दिमाग़ नियन्त्रित करते हैं। 2016 में संस्था के पनवेल आश्रम से ऐसी नशीली दवाएँ मिली थीं जो तन्त्रिका तन्त्र को प्रभावित करती हैं।

सनातन संस्था की वेबसाइट पर कुछ बहुमूल्य मशविरे भी दिये गये हैं। उनमें से कुछ नीचे दिये जा रहे हैं।

- बिना कपड़े उतारे स्नान करना चाहिए, वरना शैतानी ताक़तें आपका नुक़सान कर सकती हैं।

- टॉयलेट जाने के बाद साबुन की बजाय मिट्टी से हाथ धोएँ।

- रात में आईना देखने से बचना चाहिए वरना माहौल में मौजूद शैतानी आत्माएँ आईने में दिखने वाले चेहरे पर हमला बोल सकती हैं।

- श्राद्ध के दिनों में दाँतों को साफ़ नहीं करना चाहिए और न ही खाने के बाद पानी से मुँह साफ़ करना चाहिए, क्योंकि इससे पुरखों की चमत्कारिक किरणों का प्रभाव कम हो जाता है।

- हेयर ड्रायर से अपने बालों को नहीं सुखाना चाहिए, क्योंकि ड्रायर की आवाज़ से शैतानी ताक़तें खिंची चली आती हैं। इन शैतानी तरंगों का बुरा असर बालों की जड़ों पर पड़ता है और शरीर में विध्वंसक जज़्बात पैदा हो जाते हैं।

- वाशिंग मशीन का इस्तेमाल नहीं करना चाहिए।

- गहरे रंग के कपड़े तामसी होते हैं, शैतानी शक्तियों के आसानी से शिकार बनते हैं।

- महिलाओं को बाल सँवारते समय ऐसे भाव मन में लाने चाहिए कि "हे भगवान, मेरे बालों को ऋणात्मक ऊर्जा से बचाओ!"

ये सब देखकर आसानी से समझा जा सकता है कि तार्किकता और वैज्ञानिकता की बात करने वाले नरेन्द्र दाभोलकर व अन्य लोग सनातन संस्था की नज़र में दुश्मन क्यों बन गये होंगे और "धर्मरक्षकों" का ख़ून खौल उठा होगा, और वह तभी शान्त हुआ होगा जब "संहारकों" ने "पापियों" के ख़ून से अपने हाथ धो लिये होंगे।

ऐसे कट्टरपन्थी हत्यारे संगठनों का उभार सिर्फ़ भारत तक सीमित नहीं है और ना ही किसी एक धर्म की बात है। बंगलादेश के इस्लामिक कट्टरपन्थी भी इस मामले में भारत के हिन्दू कट्टरपन्थियों को तगड़ी प्रतिस्पर्धा दे रहे हैं। बंगलादेश में इस्लामिक कट्टरपन्थियों द्वारा क़रीब 50 तर्कवादी लेखकों, सेक्युलर बुद्धिजीवियों, ब्लॉगरों या पत्रकारों की हत्या की जा चुकी थी, जिनमें 20 विदेशी नागरिक थे। हर जगह सबसे पहले तर्कवादी, सेक्युलर और प्रगतिशील बुद्धिजीवियों को ही ख़त्म किया जाता है, ताकि बाद में जब आम लोगों के प्रतिरोध को ख़ून की नदियों में डुबोया जाये तो आवाज़ उठाने वाला भी कोई न हो।

आज जब जनता अपनी ज़िन्दगी से जुड़े बुनियादी सवालों के जवाब माँग रही है तो उसे बहकाने, भरमाने और आपस में बाँटने के लिए फासिस्ट सत्ता और संघ गिरोह के संगठन जाति और धर्म के झूठे नारे उछाल रहे हैं और हिन्दू राष्ट्र के हवाई सपने के नाम पर हिन्दू कट्टरपन्थ को खुलेआम बढ़ावा दे रहे हैं। सनातन संस्था और हिन्दू जनजागृति समिति जैसे संगठनों का वे कुशलता से इस्तेमाल कर रहे हैं। इन हत्यारे संगठनों पर कठोर प्रतिबन्ध लगाने और इसके हत्यारे सदस्यों को सज़ा दिलवाने के लिए व्यापक जनदबाव बनाने की ज़रूरत है। लेकिन हमें यह भी समझ लेना चाहिए कि इस व्यवस्था में प्रतिबन्ध-मात्र लग जाने से इनकी कार्रवाइयाँ बन्द नहीं हो जायेंगी। धार्मिक कट्टरपन्थ की राजनीति के विरुद्ध एक जुझारू जन आन्दोलन खड़ा करने की ज़रूरत है।

इसके लिए सबसे पहले आम लोगों को यह समझाना होगा कि धार्मिक कट्टरपन्थ, चाहे वो किसी भी धर्म का हो, हमारे लिए बेहद ख़तरनाक है। शासक वर्ग और लुटेरों के हाथ का यह सबसे ख़तरनाक हथियार है। अंग्रेज़ों की बाँटो और राज करो की नीति आज भी इसलिए कारगर है क्योंकि लोगों का बड़ा हिस्सा धर्म के नशे में सोया हुआ है। तर्क और विज्ञान की रोशनी ही हमारी मदद कर सकती है। इसीलिए ये लोग तर्कवादियों और वैज्ञानिक विचारधारा रखने वाले बुद्धिजीवियों को अपना निशाना बनाते हैं, ताकि जनता तक तर्क और विज्ञान की शक्ति पहुँच ही न पाये और वह अज्ञानी, मूढ़ बनी हुई इनके हाथों लुटती-पिटती रहे। आज भगतसिंह, गणेश शंकर विद्यार्थी, राहुल सांकृत्यायन, राधामोहन गोकुल आदि के विचारों को बड़े पैमाने पर लोगों के बीच ले जाने की ज़रूरत है।

साथ ही, आज धार्मिक कट्टरता (चाहे हिन्दू कट्टरता हो या मुस्लिम कट्टरता) के इलाज के लिए एक जुझारू क्रान्तिकारी धर्मनिरपेक्ष आन्दोलन और नौजवानों के जुझारू दस्तों का निर्माण सबसे अहम कार्यभार है। ऐसे दस्ते जिनमें सभी धर्मों और जातियों के न्यायप्रिय और धर्मनिरपेक्ष लोग हों और जो हर धर्म की कट्टरता का कड़ाई से विरोध करने में सक्षम हों। दंगा करने वाले कट्टरपन्थियों (चाहे हिन्दू कट्टरपन्थी हों या मुस्लिम) को खदेड़ सकें। यही आज के समय में साम्प्रदायिकता और धार्मिक कट्टरता का एकमात्र इलाज हो सकता है। एक धर्म की कट्टरता के ख़िलाफ़ दूसरे धर्म की कट्टरता के साथ जा खड़े होना इस बीमारी को और बढ़ायेगा। अगर मुस्लिम कट्टरता के ख़िलाफ़ हिन्दू कट्टरता को बढ़ावा दिया जाये या हिन्दू कट्टरता के विरोध में मुस्लिम कट्टरता को बढ़ावा दिया जाये तो इससे अनन्त काल तक चलने वाली एक विनाशकारी लड़ाई का जन्म होगा, जिसमें पूरा नुक़सान आम जनता को ही उठाना पड़ेगा और फ़ायदा सिर्फ़ दोनों धर्मों के कट्टरपन्थी नेताओं और सत्ता पर काबिज़ लुटेरों को मिलेगा। हर तरह की धार्मिक कट्टरता का विरोध करने के साथ ही जनता को शोषण-उत्पीड़न, बेरोज़गारी, महँगाई, शिक्षा, स्वास्थ्य जैसे बुनियादी मुद्दों पर संगठित करने के प्रयासों को तेज़ करने की भी ज़रूरत है।

मेहनतकशों को आपस में कौन लड़ा रहा है, इसे समझो!

बिहार और यूपी के मजबूर मज़दूरों को हाल में मार-पीटकर गुजरात से भगाने वाले गुजराती मालिक नहीं, मज़दूर ही थे। उनकी झोंपड़ियों में आग अडानी ने नहीं लगायी, बल्कि ख़ुद शोषित, बेहाल गुजराती मज़दूरों ने ही ये काम अंजाम दिया। महाराष्ट्र में तो ये वहशीपन पिछले 25-30 साल से होता आ रहा है। पंजाब में भी इसी तरह के हालात बनने की सुगबुगाहट है। कभी भी कोई घटना, जैसे गुजरात में मासूम बच्ची से बलात्कार, आग भड़का सकती है। दरअसल सर्वहारा वर्ग में ये भ्रातृघाती बैर पहले ग़ुलाम राष्ट्र और मालिक राष्ट्र वाला समीकरण पैदा करता था, यूरोप के लुटेरे मुल्क़ों के मज़दूर ख़ुद को शासक मालिक की ही तरह, भारत जैसे गुलाम मुल्क़ों के मज़दूर का मालिक समझते थे, वैसा ही अन्तर, वैसा ही वैमनस्य आज पूँजीवाद का अन्तर्निहित असमान विकास का नियम कर रहा है। शासक वर्गों के अलग-अलग धड़े और पार्टियाँ अपने निहित स्वार्थों में इस आग को और भड़कायेंगे। इसलिए ज़रूरी है कि मज़दूरों के बीच इस सच्चाई का प्रचार किया जाये कि सभी मज़दूरों के हित एक हैं और उनका साझा दुश्मन वे लुटेरे हैं जो देशभर के तमाम मेहनतकशों का ख़ून चूस रहे हैं।

कार्ल मार्क्स ने इस मुद्दे को कितनी ख़ूबसूरती से समझाया है, देखिए :

"और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है : इंग्लैण्ड के हर औद्योगिक और वाणिज्यिक केन्द्र में इस समय ऐसी मज़दूर आबादी मौजूद है जो एक-दूसरे के साथ दुश्मनी ठाने हुए दो शिविरों में बँटी हुई है, अंग्रेज़ सर्वहारा और आयरिश सर्वहारा (आयरलैण्ड के प्रवासी मज़दूर - अनु.)। आम अंग्रेज़ मज़दूर आयरिश मज़दूर को ऐसे प्रतिस्पर्धी के रूप में देखता है जिसके कारण उसके जीवनस्तर में गिरावट आती है और उससे नफ़रत करता है। आयरिश मज़दूरों की तुलना में वह ख़ुद को शासक राष्ट्र के सदस्य के रूप में देखता है और इस तरह अपनेआप को आयरलैण्ड के विरुद्ध कुलीनों और पूँजीपतियों के एक औज़ार में तब्दील कर देता है, और अपने ऊपर उनके वर्चस्व को पहले से भी ज़्यादा मज़बूत बना लेता है। वह आयरिश मज़दूर के विरुद्ध धार्मिक, सामाजिक और राष्ट्रीय पूर्वाग्रहों से भरा हुआ है। उनके प्रति उसका रवैया काफ़ी कुछ वैसा ही है जैसा अमेरिका के भूतपूर्व दास रखने वाले राज्यों में 'ग़रीब गोरों' का 'हब्शियों' के प्रति होता था। आयरिश लोग इसका बदला उसी की भाषा में सूद-ब्याज सहित चुकाता है।

वह मानता है कि अंग्रेज़ मज़दूर आयरलैण्ड में इंग्लैण्ड के प्रभुत्व के अपराध में भागीदार है और साथ ही उसका एक मूर्ख औज़ार भी बना हुआ है।

इस शत्रुता को प्रेस, धर्मगुरु और कॉमिक अख़बार, संक्षेप में शासक वर्गों के हाथ में तमाम साधनों के ज़रिये कृत्रिम रूप से ज़िन्दा रखा जाता है और तेज़ किया जाता है। संगठित होने के बावजूद अंग्रेज़ मज़दूरों के कुछ भी कर पाने में नाकाम रहने का यही राज़ है। यही वह राज़ है जिसके ज़रिये पूँजीपति वर्ग अपनी ताक़त क़ायम रखता है। और वह वर्ग इसे अच्छी तरह जानता है।"

– कार्ल मार्क्स,
सीगफ़्रीड मेयर और कार्ल वोग्ट के
नाम पत्र में, 9 अप्रैल, 1870

इंग्लैण्ड की जगह गुजरात-महाराष्ट्र और आयरलैण्ड की जगह यूपी-बिहार पढ़िए; एकदम वही हो रहा है।

— सत्यवीर सिंह

जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र के पैनल की रिपोर्ट के निहितार्थ
अगर समय रहते पूँजीवाद को ख़त्म न किया गया तो वह मनुष्यता को ख़त्म कर देगा

पिछले कुछ दशकों से दुनियाभर के वैज्ञानिक जलवायु परिवर्तन के ख़तरे और उसके प्रलयंकारी परिणामों को लेकर आगाह करते रहे हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ की संस्था 'जलवायु परिवर्तन पर अन्तर-सरकारी पैनल' (आईपीसीसी) जलवायु परिवर्तन पर कई रिपोर्टें प्रकाशित कर चुकी है, जिनमें यह चेतावनी दी जाती रही है कि यदि दुनियाभर में ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन नियन्त्रित नहीं किया गया तो हमारी आने वाली पीढ़ियों को विनाशकारी तूफ़ानों, बाढ़, सूखा और विशाल पैमाने पर भुखमरी का सामना करना पड़ेगा और पृथ्वी का पारिस्थितिक तन्त्र इतना बिगड़ सकता है कि जीवन का अस्तित्व ख़तरे में पड़ जायेगा। लेकिन पिछले 8 अक्टूबर को आईपीसीसी ने एक रिपोर्ट जारी की जिसमें यह चेतावनी दी गयी है कि जलवायु परिवर्तन से होने वाली तबाही का मंजर पृथ्वी पर रह रहे अधिकांश लोगों के जीवनकाल में ही देखने को मिल सकता है। रिपोर्ट में यह दावा किया गया है कि यदि वर्ष 2030 तक पृथ्वी के तापमान की वृद्धि को औद्योगिक क्रान्ति से पहले के तापमान की तुलना में 1.5 प्रतिशत तक सीमित न किया गया तो पृथ्वी पर मनुष्य सहित तमाम जीवों के अस्तित्व को बचाने में बहुत देर हो चुकी होगी।

ग़ौरतलब है कि अब तक जलवायु परिवर्तन को रोकने के लिए किये जा रहे प्रयासों का लक्ष्य पृथ्वी के तापमान में वृद्धि के लक्ष्य को औद्योगिक क्रान्ति से पहले की तुलना में 2 प्रतिशत तक सीमित करने का रखा जाता था। परन्तु आईपीसीसी की नवीनतम रिपोर्ट में यह दावा किया गया है कि 1.5 प्रतिशत का लक्ष्य रखने से दुनिया के विभिन्न हिस्सों में रह रहे करोड़ों ग़रीब लोगों का जीवन ख़तरे में पड़ने से बचाया जा सकता है। रिपोर्ट के अनुसार 2 प्रतिशत के लक्ष्य की तुलना में 1.5 प्रतिशत का लक्ष्य रखने से वर्ष 2100 तक पृथ्वी पर समुद्र के स्तर में वृद्धि को 10 सेमी तक कम किया जा सकता है। 2 प्रतिशत का लक्ष्य रखने पर पृथ्वी की एक-तिहाई से भी ज़्यादा आबादी चरम गर्मी की लहर से प्रभावित होगी, जबकि 1.5 प्रतिशत का लक्ष्य रखने पर यह आँकड़ा घटकर 14 प्रतिशत रह जायेगा। इसी तरह 2 प्रतिशत का लक्ष्य रखने पर आर्कटिक समुद्र में जमा बर्फ़ पिघलने लगेगी जिससे भालू, व्हेल, सील और समुद्री पक्षी आदि के हैबिटैट को नुक़सान होगा। इसी तरह 2 प्रतिशत का लक्ष्य रखने पर कोरल रीफ़ को विलुप्त होने से नहीं बचाया जा सकेगा।

रिपोर्ट में 1.5 प्रतिशत के लक्ष्य को पूरा करने के लिए विश्व अर्थव्यवस्था में बड़े बदलाव करने की बात कही गयी है। उदाहरण के लिए कार्बन के उत्सर्जन को नियन्त्रित करने के लिए ऊर्जा कर लगाने की बात कही गयी है। 1.5 प्रतिशत के लक्ष्य को पूरा करने के लिए प्रति टन उत्सर्जित कार्बन पर 5500 डॉलर तक का ऊर्जा कर लगाने की बात कही गयी है। ग़ौरतलब है कि वर्तमान में कार्बन का उत्सर्जन करने वाले ईंधन की उपभोग की जाने वाली कुल ऊर्जा की खपत में हिस्सेदारी 80 प्रतिशत है। ऐसे में इतना भारी कर लगाने से समूची विश्व अर्थव्यवस्था चरमरा जायेगी क्योंकि इससे परिवार से लेकर तमाम व्यवसाय तबाह हो जायेंगे। ज़ाहिर है कि जिस अर्थव्यवस्था का मूलमन्त्र ज़्यादा से ज़्यादा मुनाफ़ा कमाना हो वहाँ इतना बड़ा कर लगाना मुमकिन ही नहीं लगता।

साम्राज्यवादी विश्व की सच्चाई तो यह है कि 1.5 प्रतिशत का लक्ष्य तो दूर की बात है, 2016 के पेरिस सम्मेलन में तय किये गये 2 प्रतिशत के लक्ष्य के लिए आवश्यक क़दम भी अभी तक नहीं उठाये गये हैं। कार्बन के सबसे बड़े उत्सर्जक अमेरिका में ट्रम्प प्रशासन ने पिछले साल ही पेरिस समझौते से अमेरिका को वापस ले लिया था। दुनिया के विभिन्न हिस्सों में ऐसी सरकारें बन रही हैं जिनका रुझान संरक्षणवादी नीतियों की ओर अधिक है। उदाहरण के लिए ब्राज़ील में हाल के चुनावों में दक्षिणपन्थी जेयर बोल्सोहनारो के उभार की वजह से अमेज़न के वर्षावनों के काटे जाने पर रोक की बजाय एग्रीबिज़नेस कम्पनियों को खुली छूट देने की सम्भावना अधिक है। ऐसे में ऊर्जा कर जैसे उपाय पर आम सहमति बन पाना टेढ़ी खीर है।

ग्लोबल वार्मिंग और जलवायु परिवर्तन द्वारा उपजे संकट के मूल में पूँजीवादी उत्पादन व्यवस्था ही है क्योंकि जंगलों की अन्धाधुन्ध कटाई से लेकर ग्रीन हाउस गैसें पैदा करने वाले ईंधन की बेरोकटोक खपत के पीछे मुनाफ़े की अन्तहीन हवस ही है जिसने प्रकृति में अन्तर्निहित सामंजस्य को तितर-बितर कर दिया है। इस व्यवस्था से यह उम्मीद करना बेमानी है कि इस संकट का समाधान इसके भीतर से निकलेगा। समाधान तो दूर इस व्यवस्था में इस संकट से भी मुनाफ़ा पीटने के नये-नये मौक़े दिन-प्रतिदिन ईज़ाद हो रहे हैं। उदाहरण के लिए समुद्र तट पर स्थित बस्तियों के डूबने के ख़तरे से बचने के लिए एक संरक्षण दीवार बनाने की कवायद हो रही है, जिससे भारी मुनाफ़ा पीटा जा सके। ऐसे में जीवन का नाश करने पर तुली इस मुनाफ़ा-केन्द्रित व्यवस्था का नाश करके ही इस संकट से छुटकारा मिल सकता है।

– आनन्द सिंह

टेक्स्टाइल उद्योग में हड़ताल और बोल्शेविकों का काम

(पेज 13 से आगे)

शुरू हो गया। इकट्ठा हुए पैसे को दूमा में सामाजिक-जनवादी धड़े के पास भेज दिया गया, जिसने इसे सही ढंग से बाँटने का इन्तज़ाम करवाया।

तालाबन्दी के बारे में संसद में प्रस्ताव

तालाबन्दी के शुरुआती दिनों में, टेक्स्टाइल मज़दूरों ने सामाजिक-जनवादी धड़े से यह माँग की थी कि मालिकों द्वारा हज़ारों मज़दूरों के साथ किये गये अमानवीय व्यवहार के बारे में सरकार से हस्तक्षेप करने के लिए दूमा में आवाज़ उठायी जाये। दूमा धड़े की आपात बैठक में तत्काल इस प्रस्ताव को तैयार करके पहला अवसर पाते ही संसद में रखने का फ़ैसला किया गया। प्रस्ताव तैयार करके फरवरी के शुरू में ही पेश कर दिया गया, लेकिन 1 मार्च तक उस पर चर्चा नहीं करायी गयी, यानी तालाबन्दी शुरू होने के छह हफ़्ते बाद तक। दूमा के बहुमत ने इस सवाल पर चर्चा को जानबूझकर टाले रखा ताकि मज़दूरों का उत्साह ठण्डा पड़ जाये।

सरकार के सामने इस तरह के प्रस्ताव तभी लाये जा सकते थे जब किसी क़ानून का उल्लंघन होने की बात हुई हो। तालाबन्दी इस तरह का उल्लंघन नहीं था क्योंकि रूसी साम्राज्य का क़ानून मज़दूरों को एकमुश्त काम से निकाले जाने पर रोक नहीं लगाता था। इसलिए, प्रस्ताव को क़ानूनी हिसाब से तैयार करने के लिए हमें इसमें फ़ैक्ट्री इंस्पेक्टरों द्वारा अपना कर्तव्य पूरा नहीं करने का मुद्दा उठाना पड़ा। इस औपचारिक आधार के पीछे असली बात उठायी जानी थी – और वह थी मज़दूर वर्ग और उसके ट्रेड यूनियन संगठनों के ख़िलाफ़ पूँजीपतियों के संगठित अभियान का भण्डाफोड़ करना।

प्रस्ताव की शुरुआत में मिल-मालिकों द्वारा घोषित तालाबन्दी से पैदा हुए हालात का वर्णन किया गया था। अन्त में, यह कहा गया था कि संसद को श्रम एवं व्यापार के मंत्री से पूछना चाहिए कि क्या उन्हें फ़ैक्ट्री इंस्पेक्टरों की ग़ैर-क़ानूनी कार्रवाइयों की जानकारी है और वे क्या क़दम उठाने वाले हैं जिससे उनके विभाग के ये अधिकारी अपनी क़ानूनी ड्यूटी निभाने के लिए बाध्य हों।

हालाँकि संसद ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया लेकिन इसकी स्थिति भी हमारे धड़े की ओर से पेश किये गये दूसरे प्रस्तावों से बेहतर नहीं रही। प्रस्ताव मिलने के बाद, सम्बन्धित मंत्रालय लाल फ़ीताशाही की पूरी मशीनरी को सक्रिय कर देते थे – ''मामले की जाँच की जा रही है'', ''रिपोर्ट की प्रतीक्षा है'' आदि-आदि। इस तरह प्रस्ताव फ़ाइलों में पड़े-पड़े धूल खाता रहता था जबकि असल मामला ठण्डा पड़ जाता था, और उसके बाद ही मंत्री महोदय अपना औपचारिक दायित्व निभाते थे और संसद में अपना ''जवाब'' पेश करते थे।

करीब छह हफ़्ते की देर के बाद, श्रम एवं व्यापार मंत्रालय के एक अफ़सर, लितविनोव-फ़ेलिंस्की ने प्रस्ताव का उत्तर दिया। यह अफ़सर ज़ारशाही सरकार की पूरी श्रम नीति के पीछे के असली दिमाग़ और उसे लागू करने वाले के रूप में जाना जाता था। उसके जवाब ने उससे पहले ज़ार के मंत्रियों की कही गयी हर बात को भी झूठा साबित कर दिया। लितविनोव ने सीधे कह दिया कि प्रस्ताव में जिस स्थिति की चर्चा की गयी है वैसा कुछ हुआ ही नहीं है; कि कॉटन मिल के कार्डिंग विभाग में मज़दूरी में कोई कटौती नहीं की गयी, कि कोई तालाबन्दी हुई ही नहीं और फ़ैक्ट्री इंस्पेक्टरों ने कोई ग़ैर-क़ानूनी काम नहीं किया। यह जवाब उस समय के हालात को देखते हुए भी बेहद वाहियात था। धुर दक्षिणपंथी मारकोव, पुरिशकेविच और उनके दूसरे साथियों ने ख़ुश होकर तालियाँ बजायीं और ''वामपंथियों के झूठों'' का मज़ाक उड़ाया।

मैक्सवेल फ़ैक्ट्री में हुई दूसरी तालाबन्दी

कॉटन मिल का संघर्ष अभी ख़त्म ही हुआ था कि टेक्सटाइल उद्योग में एक और तालाबन्दी हो गयी। इस बार मैक्सवेल के कारख़ानों के मज़दूर निकाले गये, जहाँ दिसम्बर 1912 में एक तीखा विवाद हो चुका था। यहाँ पर मालिकों ने और भी नंगई के साथ हमला किया। जैसाकि पिछले विवाद में भी हुआ था, मज़दूरों को सीधे काम से निकाल दिया गया क्योंकि उन्होंने एक राजनीतिक हड़ताल में भागदारी की थी। यह हड़ताल लेना नाम की जगह पर मज़दूरों के ऊपर हुए गोलीकाण्ड की बरसी पर आयोजित की गयी थी।

इसके बाीद हुई मीटिंग में मज़दूरों ने तय किया कि अपना हिसाब लेकर बर्खास्तगी को स्वीकार नहीं करेंगे बल्कि इसका जवाब हड़ताल से देंगे और फ़ैक्ट्री में काम कर रहे सभी मज़दूरों को वापस लेने की माँग करेंगे। काम के हालात के बारे में कुछ और माँगें भी इसमें जोड़ दी गयीं। अभावों के बावजूद, मज़दूर पूरे जोश के साथ लड़े और पहले की तरह इस बार भी उन्हें सेंट पीटर्सबर्ग के सर्वहारा वर्ग का समर्थन मिला।

हड़ताली मज़दूरों ने मुझसे सहायता कोष इकट्ठा करने के काम को संगठित करने के लिए कहा। हड़ताल के शुरुआती दिनों में मैंने सारे मज़दूरों के नाम एक अपील 'प्राव्दा' में प्रकाशित की। इसका तुरन्त और सन्तोषजनक जवाब मिला – सभी कारख़ानों में चन्दे जुटाये गये। शाम को पैसा मेरे पास लाया गया और मैंने उसे हड़तालियों के प्रतिनिधियों को सौंप दिया। पहले दिन 700 रूबल इकट्ठा हुए, दूसरे दिन 500 से ज़्यादा और ये सिलसिला चलता रहा।

तालाबन्दी और हड़ताल एक महीने से ज़्यादा चली। जब 2 मई को फ़ैक्ट्री फिर खुली, तो सभी मज़दूरों को वापस नहीं लिया गया, लेकिन मैनेजमेंट अपनी योजना पूरी तरह लागू नहीं कर पाया। तालाबन्दी घोषित करते समय उसने मज़दूरी में कटौती और काम के घण्टे बढ़ाने की बात कही थी, लेकिन उसे पुरानी दरें बरकरार रखनी पड़ीं। यह मज़दूरों के लिए एक जीत थी जिन्होंने बड़े संगठित तरीके से लम्बा संघर्ष चलाया था।

1913 के बसन्त में, टेक्सटाइल उद्योग की कई मिलों में फिर तालाबन्दी कर दी गयी। जब तक बाज़ार के हालात मालिकों के लिए अनुकूल नहीं थे, तब तक वे बार-बार तालाबन्दी करते रहे। गर्मियों में, जब कुछ समय बाद होने वाले निज्नी-नोवगोरोद के विशाल मेले के मद्देनज़र कपड़ा बाज़ार की हालत धीरे-धीरे सुधरने लगी, तब तालाबन्दी करने में मालिकों का फ़ायदा नहीं रहा। इसके बाद मज़दूरों ने आर्थिक माँगों को लेकर कई हड़तालें कीं और अपने काम की स्थितियों और मज़दूरी में सुधार करवाने में सफल रहे।

1912-13 की तालाबन्दियों के दौरान, सेंट पीटर्सबर्ग के टेक्सटाइल मज़दूरों ने बहुत कठिनाइयाँ सहीं, लेकिन कई हारों का सामना करने के बावजूद बहुत से लाभ भी उन्हें मिले। रूसी सर्वहारा वर्ग के सबसे पिछड़े हिस्से, टेक्सटाइल मज़दूरों ने संगठन और एकजुटता के महत्व को समझ लिया। उनकी तकलीफ़ें बेकार नहीं गयीं। इसने मज़दूरों को तैयार करने और आगे आनी वाली लड़ाइयों के लिए मज़बूत बनाने का काम किया।

क्रान्तिकारी चीन ने प्रदूषण की समस्या का मुक़ाबला कैसे किया और चीन के वर्तमान पूँजीवादी शासक किस तरह पर्यावरण को बरबाद कर रहे हैं!

प्रस्तुत लेख इस बात पर रोशनी डालता है कि समाजवादी चीनी जनता ने किसी प्रकार प्रदूषण और औद्योगिक कचरे का सफलतापूर्वक मुक़ाबला किया। लेकिन इससे भी महत्वपूर्ण यह है कि इस लेख से पता चलता है कि यह काम ऐसे समाज के निर्माण के एक अंग के रूप में किया गया जिसका लक्ष्य हर प्रकार की वर्ग असमानताओं, उत्पीड़क सम्बन्धों और विचारों से छुटकारा पाना था। महत्वपूर्ण बात यह है कि जनसमुदाय इन समस्याओं को हल करने के क्रान्तिकारी मार्ग तक पहुँच और खाका बनाने लगा था। और यह सब वर्ग संघर्ष और समाजवाद के निर्माण के एक अंग के रूप में समाज में मौजूद उन ताक़तों से जूझते हुए किया गया जो चीन को पूँजीवादी रास्ते पर धकेलना चाहती थीं। इसने दिखा दिया कि प्रदूषण और पर्यावरण के विनाश का कारण पूँजीवादी उद्योग है, न कि अपने आप में उद्योग। – सम्पादक

आज पूरी दुनिया में पर्यावरण बचाओ की चीख़-पुकार मची हुई है। कभी पर्यावरण की चिन्ता में दुबले हुए जा रहे राष्ट्राध्यक्ष, तो कभी सरकार की बेरुख़ी से नाराज़ एनजीओ आलीशान होटलों के एसी कमरों-सभागारों में मिल-बैठकर पर्यावरण को हो रहे नुक़सान को नियन्त्रित करने के उपाय खोजते फिर रहे हैं। लेकिन पर्यावरण के बर्बाद होने के मूल कारणों की कहीं कोई चर्चा नहीं होती। न ही चर्चा होती है उस दौर की जब जनता ने औद्योगिक विकास के साथ शुरू हुई इस समस्या को नियन्त्रित करने के लिए शानदार क़दम उठाये। जी हाँ, जनता ने! इसका एक उदाहरण क्रान्तिकारी चीन है, जहाँ 1949 की नव-जनवादी क्रान्ति के बाद कॉमरेड माओ के नेतृत्व में चीनी जनता ने इस मिथक को तोड़ने के प्रयास किये कि औद्योगिक विकास होगा तो पर्यावरण को नुक़सान पहुँचेगा ही।

लेकिन समाजवादी दौर के चीन की उन उपलब्धियों पर चर्चा करने से पहले बेहतर होगा कि ‘‘बाज़ार समाजवाद’’ के नाम पर पूँजीवादी नीतियों पर चल रहे चीन में पर्यावरण की दुर्दशा पर नज़र डाल ली जाये।

पूँजीवादी "सुधारों" ने किया पर्यावरण को बर्बाद

तीस वर्षों के "सुधार" ने चीन के पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधनों को नष्ट कर डाला है। चीन में सीमित प्राकृतिक संसाधन और बेहद कम खेती योग्य ज़मीन है। ऐसे में चीन में किसी भी तरह का दीर्घकालिक विकास प्राकृतिक संसाधनों और खेती योग्य ज़मीन के संरक्षण पर ही आधारित हो सकता है। लेकिन तीस वर्षों के पूँजीवादी सुधारों में देश के लिए ज़रूरी नीतियों से उलट नीतियों पर अमल किया गया।

चीन में विश्व की खेती योग्य ज़मीन का केवल 9 प्रतिशत है, जबकि उसे दुनिया की 22 प्रतिशत आबादी को भोजन उपलब्ध कराना होता है। सुधारों के आरम्भ से अब तक कृषि भूमि को औद्योगिक और व्यापारिक इस्तेमाल के लिए देने और किसानों द्वारा खेती नहीं करने के कारण खेती योग्य ज़मीन में काफ़ी कमी आयी है।

इसके अलावा, चीन में प्रति व्यक्ति केवल 2,000 क्यूबिक मीटर पानी ही उपलब्ध है, जोकि पूरी दुनिया में उपलब्ध औसत पानी का एक चौथाई है। औद्योगिक उत्पादन और शहरीकरण की ऊँची दर के कारण पानी की खपत बढ़ गयी है, जिससे सिंचाई और ग्रामीण आबादी को बेहद कम पानी मयस्सर होता है। चीन के जल संसाधन मन्त्रालय की एक रिपोर्ट के अनुसार, चीन की कुल 114,000 किलोमीटर की लम्बाई वाली नदियों में से 28.9 प्रतिशत का पानी ही अच्छी गुणवत्ता वाला है और 29.8 प्रतिशत पानी की गुणवत्ता ख़राब है। 16.1 प्रतिशत पानी मनुष्यों के छूने लायक़ भी नहीं है और नदियों का शेष 25.2 प्रतिशत पानी इतना प्रदूषित हो चुका है कि उसे किसी काम में नहीं लाया जा सकता।

प्रदूषण का आलम यह है कि 1990 के दशक के अन्त में, क्षेत्र के 17 करोड़ लोगों की ज़रूरतों को पूरा करने वाली पीली नदी 226 दिनों तक सूखी रही। नदियाँ ही नहीं, बल्कि चीन में भूमिगत जल भी तेज़ी से कम हो रहा है। जल संसाधन मन्त्रालय के ही अनुसार, भूमिगत जल के तेज़ी से घटते स्तर ने भूकम्पों और भूस्खलनों के ख़तरे तथा ज़मीन के बंजर होने की समस्या को और बढ़ा दिया है। जल और भूमि प्रदूषण ग्रामीण आबादी के लिए घातक साबित हो रहा है। कुछ गाँवों में, कैंसर की दर राष्ट्रीय औसत से 20 या 30 प्रतिशत अधिक है। प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक उपयोग और चीन के पर्यावरण की तबाही निर्यात को बढ़ाकर जीडीपी की उच्च दर को क़ायम रखने की अन्धाधुन्ध रणनीति का सीधा परिणाम है।

जल प्रदूषण के साथ ही, वायु और भूमि प्रदूषण की समस्या भी बहुत गम्भीर हो चुकी है। दुनिया के 20 सबसे ज़्यादा प्रदूषित शहरों में से 16 शहर चीन के हैं। वायु प्रदूषण से शहरवासियों को साँस की गम्भीर बीमारियाँ हो रही हैं। आर्थिक सहयोग और विकास संगठन ओईसीडी के एक अध्ययन के अनुसार चीन में 300 मिलियन लोग प्रतिदिन दूषित पानी पीते हैं, और 190 मिलियन लोग दूषित जल के कारण होने वाले रोगों से पीड़ित हैं। यही नहीं इस अध्ययन के अनुसार यदि जल्दी ही चीन में वायु प्रदूषण की समस्या को नियन्त्रित नहीं किया गया तो आने वाले 13 वर्षों में साँस सम्बन्धी बीमारियों से चीन के 600,000 लोगों की समय से पहले मौत हो जायेगी, जबकि 2 करोड़ लोग इन बीमारियों से पीड़ित होंगे।

क्रान्तिकारी चीन की जनता ने निकाला प्रदूषण की समस्या का हल

संशोधनवादियों की अगुवाई में चल रही पूँजीवादी नीतियों का पर्यावरण पर पड़ने वाला प्रभाव अब चीन की जनता के साथ ही साथ पूरी दुनिया के भी सामने है। अब ज़रा इस पर नज़र डाली जाये कि समाजवादी निर्माण (1976 में माओ के देहान्त से पहले) के दौर में चीन की जनता ने पर्यावरण की समस्या का सामना कैसे किया।

1960 के दशक के अन्त में क्रान्तिकारी चीन में त्सित्सिहार दस लाख जनसंख्या वाला एक शहर था। ननचियांग नदी से प्राप्त होने वाली मछली पूरे प्रान्त की पैदावार के आधे के बराबर थी। लेकिन नदी में पायी जाने वाली मछलियों की संख्या दिन-ब-दिन काफ़ी कम होती जा रही थी। जाड़ों में जब नदी जम जाती थी तो बड़ी संख्या में मछलियाँ मर जाती थीं और वर्ष 1960 के मुक़ाबले में अब प्रतिवर्ष सिर्फ़ 12 प्रतिशत मछलियाँ पकड़ी जाने लगीं। ये मछलियाँ इसलिए मर रही थीं, क्योंकि उद्योग प्रतिदिन रसायन युक्त 250,000 टन दूषित पदार्थ और कचरा नदी में प्रवाहित कर रहे थे।

1968 में त्सित्सिहार पार्टी कमेटी और शहर की क्रान्तिकारी कमेटी ने इस समस्या को हल करने का निश्चय किया। चौदह शोध संस्थानों से चालीस से अधिक वैज्ञानिकों एवं तकनीशियनों को त्सित्सिहार आने और स्थानीय मज़दूरों, मछुआरों व तकनीशियनों के साथ मिलकर काम करने, तथा नदी का सर्वेक्षण करने के लिए लामबन्द किया गया। उन्होंने पाया कि दिसम्बर से अप्रैल के मध्य तक, जब नदी जमी रहती थी, नदी की तलहटी में एक पीला चिपचिपा पदार्थ जम जाता था, जिससे पानी से एक भयानक दुर्गन्ध निकलती थी। नदी में एक प्रकार की फफून्द और कुछ कार्बनिक पदार्थ जमा होते जा रहे थे क्योंकि उसमें भारी मात्रा में गन्दा पानी और रसायन फेंके जाते थे। इन अवशिष्ट रासायनिक पदार्थों से युक्त जल सामान्य जल की तुलना में 22.5 गुना अधिक ऑक्सीजन सोख लेता था और यही वह कारण था जिससे मछलियाँ मर रही थीं।

मज़दूरों, पार्टी की क़तारों और वैज्ञानिकों की एक टीम को इस समस्या से निपटने के काम में लगाया गया। उन्होंने सबसे पहले आम लोगों के बीच जाकर, उनके विचारों को जाना और यह भी जानकारी ली कि समस्या से निपटने के बारे में वे क्या सोचते हैं। इन विचारों ने समस्या के हल के लिए सुस्पष्ट दिशानिर्देशों का खाका तैयार करने में मदद की।

1. जनता की भलाई प्रस्थान बिन्दु होना चाहिए।

2. भावी पीढ़ियों के हितों को ध्यान में रखना चाहिए - समस्या का दूरगामी समाधान निकलना चाहिए न कि सिर्फ़ तात्कालिक समाधान।

3. समस्या पर सभी पहलुओं से विचार करना चाहिए, ताकि एक आपदा को दूर करने से कोई दूसरी आपदा न पैदा हो जाये।

स्वावलम्बन पर बल देते हुए टीम ने आर्थिक ज़रूरतों के लिए ऊपर के आदेशों का इन्तज़ार नहीं किया। उन्होंने एक प्रस्ताव तैयार किया और जनता के साथ विचार-विमर्श करके अन्तिम योजना तैयार कर ली गयी। कारख़ाने अब अपने हानिकारक कूड़े-कचरे का उचित प्रबन्धन करने और उन्हें उपयोगी बनाने के रास्ते निकालने के लिए स्वयं उत्तरदायी होंगे। रसायनों से युक्त गन्दा और बेकार पानी अब जलाशयों में एकत्र किया जायेगा और उसे साफ़ कर सिंचाई में इस्तेमाल किया जायेगा।

त्सित्सिहार शुगर रिफ़ाइनरी में औद्योगिक कूड़े-कचरे को उपयोगी चीज़ों में बदलने के लिए नयी शॉप स्थापित की गयी। अवशिष्ट पदार्थों से प्रतिवर्ष 1400 टन कम लागत का बढ़िया सीमेण्ट पैदा किया जाता था। जले हुए कोयले से प्रतिवर्ष 20 लाख ईंटें तैयार की जाती थीं, जिनका इस्तेमाल और नयी शॉपों को तैयार करने में किया जाता था। ये शॉप गन्ने की जड़ों से अल्कोहलिक स्पिरिट तैयार करती थीं, रद्दी शक्कर से प्रतिदिन 2 टन डिस्टिल्ड अल्कोहल तैयार करती थीं और एक पेपर मिल के निकट के गड्ढे से प्रतिवर्ष लगभग 150 टन लुगदी इकट्ठा कर उनसे पैकेजिंग पेपर बनाती थीं।

जून 1970 में, मज़दूरों, किसानों, सैनिकों, छात्रों और स्थानीय निवासियों ने मिलकर गन्दे पानी को सिंचाई के लिए इस्तेमाल करने की एक परियोजना में भाग लिया। प्रतिदिन 5000 से अधिक लोग कार्यस्थल पर आते थे और छह महीने के भीतर ही एक विशाल जलाशय और बाँध का निर्माण कर दिया गया।

जनवरी 1971 में, ननचियांग के जल में ऑक्सीजन की मात्रा मापने के लिए हुए परीक्षण से यह पता चला कि पिछले वर्ष की तुलना में अब पाँच से दस गुना अधिक ऑक्सीजन मौजूद है। पीला पदार्थ और दुर्गन्ध दोनो ग़ायब हो गये थे और नदी में मछलियों की संख्या बढ़ने लगी थी।

यह तो महज़ एक उदाहरण है, दरअसल त्सित्सिहार के लोगों की ही तरह पूरे चीन में प्रदूषण की समस्या से निपटने के लिए लाखों लोगों को लामबन्द किया गया। लेकिन यह बिना वर्ग संघर्ष के नहीं हुआ। इस प्रश्न पर जमकर संघर्ष हुआ कि यह सब ‘किसके लिए’ और ‘किस लिए’ है?

महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान मज़दूरों के बीच बहस छेड़ दी गयी। क्या किसी कारख़ाने को सिर्फ़ स्वयं की और अपने उत्पादन की परवाह करनी चाहिए या पूरी जनता की? क्या वे ‘मुनाफ़े को कमान में रखने’ के रास्ते पर जा रहे हैं या संयन्त्र को संचालित करने सम्बन्धी तमाम फैसले, ‘सच्चे दिल से जनता की सेवा करने’ और मज़दूरों-किसानों के स्वास्थ्य और जीवन-निर्वाह को ध्यान में रखते हुए लिए जाने चाहिए?

समूचे चीन में "तीन क़िस्म के रद्दी पदार्थों - रद्दी द्रव पदार्थ, रद्दी गैसों और धातु-कचरे के ख़िलाफ़ जनअभियान" शुरू किया गया। यह नारा दिया गया कि "हानिकारक चीज़ों को लाभदायक चीज़ों में बदल दो।" पुनः "रद्दी पदार्थों" के प्रश्न पर किस तरह विचार किया जाये। क्या यह औद्योगिक समाज की अपरिहार्य "बुराई" है? क्या हर तरह के रद्दी पदार्थों को इकट्ठा करके उन्हें कहीं और फेंक देने-मात्र से इस समस्या से निपटा जा सकता है? क्या यह एक ऐसी समस्या है जिससे हर व्यक्ति और हर कारख़ाने को सरोकार रखना चाहिए?

किसी चीज़ को पैदा करने में संसाधनों का कुछ अंश नये उत्पादों में रूपान्तरित हो जाता है और शेष "रद्दी" हो जाता है। लेकिन प्रश्न यह था कि इस "रद्दी पदार्थ" को किस तरह देखा जाये? किस दृष्टिकोण से और किस रवैये से? मज़दूरों के व्यापक समुदाय को माओ की दार्शनिक कृतियों का अध्ययन करने के लिए लामबन्द किया गया, विशेषकर अन्तरविरोध के नियम का अध्ययन करने के लिए जो हर चीज़ को दो में बाँटता है। उन्होंने यह रवैया अख़्तियार किया कि "वस्तुगत विश्व को जानने और उसे बदलने की लोगों की क्षमता की कोई सीमा नहीं है।"

एकांगी, आधिभौतिक दृष्टिकोण से, रद्दी पदार्थों को उपयोगी नहीं बनाया जा सकता। लेकिन क्रान्तिकारी, भौतिकवादी और द्वन्द्वात्मक दृष्टि यह बताती है कि किसी एक दशा में "रद्दी पदार्थ" भिन्न दशाओं के अन्तर्गत मूल्यवान हो सकता है। और इस प्रकार "रद्दी पदार्थ" को उपयोगी पदार्थ में बदला जा सकता है। यदि यूँ ही छोड़ दिया जाये तो औद्योगिक कचरा वातावरण को विषाक्त करता है और लोगों को नुक़सान पहुँचाता है। लेकिन जब इन रद्दी पदार्थों के संघटन "कम्पोजिशन" का अध्ययन किया गया और उनमें बदलाव किया गया तो यह पाया गया कि उन्हें उपयोगी कच्चे मालों और उत्पादों में बदला जा सकता है। इस प्रकार इसे एक "निपटारे की समस्या" के रूप में देखने के बजाय जनसमुदाय ने इसे "उपयोग की समस्या" के रूप में देखे जाने के लिए संघर्ष किया। और यह सब इसलिए हुआ क्योंकि समाजवादी निर्माण के दौर में समाज की चालक शक्ति मुनाफ़ा नहीं, बल्कि मनुष्य था। इसी वजह से प्रदूषण और पर्यावरण संरक्षण की समस्या से काफ़ी हद तक निपटा जा सका।

– सन्दीप

मज़दूर वर्ग पर टूटा 'गुजरात मॉडल' का कहर

(पेज 1 से आगे)

1 अक्टूबर को हिम्मतनगर में सम्बोधित रैली बतायी जा रही है, जिसमें उसने 14 वर्षीय बच्ची के बलात्कार का हवाला देते हुए गुजरात में रह रहे प्रवासी उत्तर भारतीयों पर जमकर ज़हर उगला। उस रैली की वीडियो सोशल मीडिया और व्हाट्सऐप के ज़रिये पूरे गुजरात में फैल गयी और जगह-जगह प्रवासी मज़दूरों पर हमले होने लगे। इन हमलों में ठाकोर की 'गुजरात क्षत्रिय ठाकोर सेना' के कार्यकर्ताओं की संलिप्तता के प्रमाण मिले हैं। 28 सितम्बर की घटना के बाद से गुजरात के विभिन्न हिस्सों में प्रवासी मज़दूरों के ख़िलाफ़ हिंसा की 42 वारदातें रिपोर्ट की गयीं जिनमें 400 से ज़्यादा लोग गिरफ़्तार किये गये। हिंसा की ख़बर फैलते ही प्रवासी मज़दूरों में ख़ौफ़ व दहशत फैल गयी, जिसकी वजह से उन्हें गुजरात छोड़ने पर मजबूर होना पड़ा। इसके अलावा तमाम प्रवासी मज़दूर कैम्पों में रहने पर मजबूर हैं।

गुजरात से उत्तर भारत के प्रवासी मज़दूरों के पलायन के इस त्रासद प्रकरण की थोड़ा और गहराई से पड़ताल करने पर हम पाते हैं कि इसके मूल में तथाकथित गुजरात मॉडल है जिसके फलस्वरूप हाल के वर्षों में गुजरात एक ओर मुनाफ़ाखोरों का स्वर्ग बनकर उभरा है तो दूसरी ओर आम मेहनतकश लोगों का जीना दभर हो गया है। नरेन्द्र मोदी के मुख्यमन्त्री पद पर आसीन होने के दौर से ही ढोल-नगाड़े पीट-पीटकर प्रचारित किये जा रहे इस गुजरात मॉडल का नतीजा यह हुआ है कि गुजरात में भयंकर आर्थिक असमानता, प्रचण्ड बेरोज़गारी, ग़रीबी और भुखमरी लगातार बढ़ती गयी है। नेशनल सैम्पल सर्वे के एक आँकड़े के अनुसार गुजरात में प्रति व्यक्ति आय राष्ट्रीय औसत से 20 प्रतिशत अधिक है, लकिन वहाँ मज़दूरी गाँवों में राष्ट्रीय औसत की तुलना में 20 प्रतिशत तथा शहरों में 15 प्रतिशत कम है।

ग़ौरतलब है कि टेक्सटाइल्स, रिफ़ाइनरी, केमिकल्स, हीरा, सेरेमिक, प्लाईवुड आदि के कारख़ानों में काम करने वाले अधिकांश मज़दूर गुजरात से बाहर से आते हैं, क्योंकि गुजरात में छोटे-मोटे धन्धों, शेयर बाज़ार की सट्टेबाजी, दुकानदारी जैसे कामों की संस्कृति की वजह से गुजराती मज़दूरों की संख्या बहुत कम है। सूरत में टेक्सटाइल्स सहित विभिन्न उद्योगों में काम करने वाले मज़दूरों में 70 प्रतिशत प्रवासी मज़दूर हैं, जबकि अहमदाबाद के लगभग आधे मज़दूर अन्य राज्यों से आते हैं। यूपी, बिहार सहित उत्तर भारत के अन्य हिस्सों से गुजरात में प्रवासी मज़दूरों का आना गुजरात के पूँजीपति वर्ग के हित में है क्योंकि उन्हें हुनरमन्द और सस्ती श्रमशक्ति मिलती है, जो ज़्यादा से ज़्यादा मुनाफ़ा पीटने की उनकी अन्तहीन हवस के लिए ज़रूरी है। यही वजह है कि हाल ही में गुजरात सरकार ने गुजरात का डोमिसाइल बनने के लिए योग्यता की अवधि 15 वर्ष से घटाकर 2 वर्ष कर दी है।

लेकिन गुजरात मॉडल बहुत बड़े पैमाने पर छोटे कारोबारियों को उजाड़ रहा है और युवाओं में बेरोज़गारी भी लगातार बढ़ती जा रही है जो एक सामाजिक उथल-पुथल की ज़मीन तैयार कर रही है। नोटबन्दी और जीएसटी ने यह प्रक्रिया और तेज़ कर दी है। इसके साथ ही गुजरात के गाँवों में पूँजीवादी विकास की वजह से छोटे और मझौले किसान तबाह हो रहे हैं। नेशनल सैम्पल सर्वे के 2012 के आँकड़े के अनुसार गुजरात के गाँवों 43 प्रतिशत किसान क़र्ज़दार हैं। किसानों के उजड़ने के मामले में गुजरात अग्रणी राज्यों में है। 2000 से 2011 के बीच गुजरात में मालिक किसानों की संख्या में 35 प्रतिशत की कमी देखने में आयी। 2013 से 2015 के बीच गुजरात में किसानों की आत्महत्या की 1483 घटनाएँ रिपोर्ट की गयीं। तबाही की परिस्थिति में वे रोज़गार की तलाश में शहरों की ओर पलायन करने पर मजबूर हो रहे हैं और शहरों में बेरोज़गारों की औद्योगिक रिज़र्व सेना में इज़ाफ़ा कर रहे हैं। गुजरात मॉडल पूँजीपतियों का मुनाफ़ा तो सुनिश्चित करता है, लेकिन रोज़गार के सृजन के मामले में वह फिसड्डी साबित हुआ है।

आर्थिक व सामाजिक असुरक्षा के इस प्रदूषित माहौल में ही साम्प्रदायिक, जातिगत और प्रवासी-विरोधी विचारों के कीटाणु भाँति-भाँति के प्रतिक्रियावादी गुटों के रूप में फल-फूल रहे हैं। गुजराती समाज में संघ परिवार की जकड़बन्दी की वजह भी यही असुरक्षा का माहौल है और हार्दिक पटेल व अल्पेश ठाकोर के नेतृत्व में जारी जातिगत गोलबन्दी भी इसी माहौल की उपज है। हाल के वर्षों में गुजरात में घटित उना की घटना, पाटीदार आन्दोलन और प्रवासी मज़दूरों पर हमलों को भी इसी रोशनी में देखा जाना चाहिए। विडम्बना तो यह है कि तमाम प्रगतिशील लोग हार्दिक पटेल व अल्पेश ठाकोर जैसे प्रतिक्रियावादी नेताओं के साथ गठबन्धन बनाकर हिन्दुत्ववादी फासीवाद से निपटने के दिवास्वप्न देख रहे हैं।

28 सितम्बर की घटना से पहले ही गुजरात में प्रवासियों के ख़िलाफ़ नफ़रत का माहौल था, क्योंकि संघ परिवार के तमाम आनुषंगिक संगठन और ठाकोर सेना जैसे तमाम प्रतिक्रियावादी संगठन लोगों की समस्याओं के लिए प्रवासियों को ज़िम्मेदार ठहराने का ज़हरीला काम कर रहे थे, ताकि उनका गुस्सा व्यवस्था के ख़िलाफ़ न हो जाये। ग़ौरतलब है कि 28 सितम्बर की घटना के तीन दिन पहले ही गुजरात के मुख्यमन्त्री विजय रूपानी ने गुजरात के उद्योगों में 80 प्रतिशत नौकरियाँ गुजरातियों के लिए आरक्षित करने की नीति को सख्ती से लागू करने का आश्वासन दिया था।

गुजरात से प्रवासी मज़दूरों के पलायन की ख़बरें जब मीडिया की सुर्खियों में छाने लगीं तो गुजरात पुलिस के आला अधिकारी मामले की लीपापोती में जुट गये। संवेदनहींनता की हदें पार करते हुए उन्होंने इसे त्योहारों के सीज़न में होने वाली सामान्य परिघटना बताया, जबकि सच्चाई तो यह है कि जब पलायन शुरू हुआ तब दशहरा, दीवाली और तीज के त्योहार अभी दूर थे और जिस तरह से मज़दूर अपना बोरिया बिस्तर लेकर जा रहे थे, उससे स्पष्ट था कि वे डर व आतंक के सताये हुए हैं। उत्तर प्रदेश के मुख्यमन्त्री योगी आदित्यनाथ ने तो सफ़ेद झूठ बोलते हुए कहा कि गुजरात से मज़दूरों के पलायन की ख़बरें अफ़वाह हैं और वहाँ मज़दूर पूरी तरह से सुरक्षित हैं। हुक्मरानों का यह रवैया बिल्कुल भी आश्चर्यजनक नहीं है, बल्कि इससे यह साबित होता है कि वे मज़दूर वर्ग के शत्रु और पूँजीपति वर्ग के सेवक हैं।

– आनन्द सिंह

बैंकिंग व वित्तीय सेक्टर के घपले-घोटाले और गहराता आर्थिक संकट

(पेज 16 से आगे)

नक़दी का टोटा पड़ जाता है; वह क़र्ज़ देने वाले म्यूचुअल फ़ण्ड, आदि को भुगतान नहीं कर पाती, म्यूचुअल फ़ण्ड को भी आगे भुगतान करना होता है, वह सैकड़ों करोड़ के शेयर/बॉण्ड एकदम से बेचता है, बाज़ार में घबराहट फैल जाती है। धड़ाम से बाज़ार गिर जाता है। पिछले दिनों जो हुआ यह उसका बहुत सरलीकृत वर्णन है, पर मक़सद ये दिखाना है कि कारोबारी मीडिया वाले 'विशेषज्ञ' कुछ भी बोलें पर इन संकटों के मूल में मुनाफ़े के लिए चलने वाले पूँजीवाद का व्यवस्थागत संकट होता है। ऐसी स्थिति में सरकार क्या करती है? वही जो वह पहले ही करना शुरू कर चुकी है – जैसे, विद्युत कम्पनियों को राहत देकर दिवालिया होने से बचाना, आईएलएफ़एस और आईडीबीआई बैंक को बचाने के लिए एलआईसी से नक़दी दिलवाना, दिवालिया होते छोटे बैंक को बड़े में विलय करना, ख़ुद भारी अप्रत्यक्ष कर लगाकर जनता से वसूला लाखों करोड़ रुपया बैंकों को देना, सरकारी वित्तीय संस्थानों को शेयर ख़रीदने के लिए कहना, रिज़र्व बैंक को आसान शर्तों पर नक़दी का प्रवाह बढ़ाने के लिए कहना, आदि।

यह वित्तीय संकट कई साल से जारी है। 2 साल पहले 6 बैंक एसबीआई में विलय कर दिये गये। फिर आईडीबीआई बैंक डूबा तो एलआईसी का सहारा लिया गया। देना बैंक भी दिवालिया होने के क़गार पर था, उसे बैंक ऑफ़ बड़ोदा में विलय कर बात टाल दी गयी। पहले भी बैंक डूबते और दूसरे बैंकों में विलय किये जाते रहे, पर पहले यह कुछ सालों में एक घटना होती थी, वहीं अब इसकी क़तार लग गयी है। और कुछ विलय आगे भी होने वाले हैं। इस विलय से लाभ क्या है? मुख्य लाभ है बड़ी तादाद में शाखाओं/दफ़्तरों की बन्दी से ज़रूरी कर्मचारियों की संख्या और अन्य ख़र्चों में कमी। एसबीआई विलय से क़रीब 4 हज़ार शाखाएँ बन्द होने की प्रक्रिया जारी है। बैंक ऑफ़ बड़ौदा में विलय होने वाले विजया बैंक के प्रबन्ध निदेशक के अनुसार उसकी 500 शाखाएँ बन्द होने वाली हैं। देना बैंक की भी 700 शाखाएँ बन्द होंगी। पर पूँजीवादी संकट अब कोई चक्रीय संकट होने के बजाय एक निरन्तर गहराता संकट है और इससे पैदा होने वाले वित्तीय संकट में पहले डूबने वाले छोटे बैंकों को विलय कर संकट को कुछ वक़्त तक छिपाया जा सकता है, हल नहीं किया जा सकता। संकट का अगला शिकार ये एसबीआई, एलआईसी, पीएनबी, बीओबी जैसे संस्थान ही होने वाले हैं। जब तक पूँजीवाद में संकट से निपटने की थोड़ी-बहुत क्षमता थी, वो बैंकों को डूबने दे सकता था और कारोबार के विलय की प्रक्रिया सरकार द्वारा नहीं, बाज़ार प्रक्रिया द्वारा होती थी। इस तरह छोटे-कमजोर बैंक बन्द होते गये और कुछ बैंक बड़े वित्तीय इजारेदार बनकर उभरे। 2008 में भी अमेरिका में लीमान ब्रदर्स और ब्रिटेन में नॉर्दर्न रॉक को ऐसे ही दिवालिया हो जाने दिया गया था। पर तब पाया गया कि इतने बड़े बैंक को ऐसे ही डूबने देने से पूरी पूँजीवादी व्यवस्था में ही संकट फैल जा सकता है। तब इन बड़े बैंकों को 'टू बिग टू फ़ेल' घोषित कर दिया गया और इन बैंकों को बचाने के लिए सरकारों ने सैकड़ों अरब डॉलर/पाउण्ड की पूँजी लगानी शुरू की, जो सरकारों द्वारा क़र्ज़ लेकर और शिक्षा, स्वास्थ्य, बेरोज़गारों की मदद, ग़रीबों के लिए अन्य कार्यक्रमों पर ख़र्च की कटौती से जुटायी गयी। इस तरह इन बैंकों को डूबने से बचाने पर इनके द्वारा दिये गये क़र्ज़ों और इनके निवेश के डूबने के कारणों को छिपा लिया जाता है और इनके उच्च प्रबन्धकों और पूँजीपतियों के मिलीभगत वाले अपराध भी छिप जाते हैं। इससे वहाँ कहावत चली - 'टू बिग टू फ़ेल, टू बिग टू जेल'! बैंकों के हो रहे विलयों के पीछे भारत में भी ऐसे ही कारण हैं और इन पर होने वाला लाखों करोड़ का बिल मेहनतकश जनता के नाम पर ही फाड़ा जाना है।

अब 4 लाख करोड़ के और क़र्ज़ एनपीए होने की ओर हैं और इन्हें चुनाव तक किसी तरह खींचना है क्योंकि एनपीए का बढ़ता संकट पूरी बैंकिंग और आर्थिक व्यवस्था में संकट को ओर गहरा करेगा जिसका बोझ हमेशा की तरह मेहनतकश जनता पर ही डाला जाना है। आईएलएफ़एस की योजनाओं के डेढ़ लाख करोड़ के अतिरिक्त इनमें ढाई लाख करोड़ तो सिर्फ़ विद्युत उत्पादन क्षेत्र का है। पूँजीवाद के अतिउत्पादन के संकट की वजह से उद्योग पहले ही 70-72% क्षमता पर काम कर रहे हैं इससे बिजली की माँग अनुमान के मुक़ाबले कम है, बिजली बिक नहीं पा रही है (निर्यात के बावजूद भी फ़ालतू है), इसलिए लगभग 40 संयन्त्र संकट में हैं। रिज़र्व बैंक के 12 फ़रवरी के सर्कुलर के मुताबिक़ बैंकों को अब तक इनके ख़िलाफ़ दिवालिया होने की कार्रवाई शुरू करनी थी, पर उसके बाद इन क़र्ज़ों को एनपीए दिखाना पड़ता जो अभी तक नहीं किया गया है।

आईएलएफ़एस मामले में सरकार के निर्णय क्या बताते हैं? यही कि वह अपनी और सार्वजनिक वित्तीय संस्थानों की तिजोरी का मुँह सरमायेदारों के लिए खोल देगी, ताकि उन्हें सस्ती दरों पर पूँजी हासिल हो सके और उनके भुगतान वादों में कोई रुकावट न आने पाये। दूसरे, उदय कोटक के नेतृत्व में संकट को सँभालने की ज़िम्मेदारी देने से यह स्पष्ट है कि पहले तो सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा उपलब्ध करायी गयी पूँजी से संकट को सँभाला जायेगा, फिर इसकी सम्पत्तियाँ संकट के नाम पर कौड़ियों के दाम निजी क्षेत्र को सौंप दी जायेंगी। इसकी यातायात क्षेत्र की सहायक कम्पनी पहले ही अपनी सम्पत्तियाँ बेचने के लिए बाज़ार में है। इसकी सलाहकार एसबीआई कैप्स ने इसे 6 योजनाएँ बन्द कर देने और 10 को बेचने का सुझाव दिया है। यह अपनी वित्तीय सेवा और ऊर्जा क्षेत्र की सहायक कम्पनियाँ भी बेचकर नक़दी जुटाने का प्रयास कर रही है। 2009 में सत्यम मामले में हम यह सब होते देख चुके हैं। तीसरे, आईएलएफ़एस को दिवालिया बनाने, इसका फ़ायदा उठाकर मुनाफ़ा कमाने वाले निजी पूँजीपति और पूँजीपतियों से मिलीभगत कर फ़ायदा पहुँचाने वाले प्रबन्धक सबको इसकी कोई सज़ा न मिलेगी, न ही मुनाफ़ा कमाने वालों से कोई वसूली की जायेगी। यही राजसत्ता का वर्ग चरित्र है - कभी आम लोगों की दुख-तकलीफ़ में इतनी जल्द मामला सँभाल लेने का आश्वासन देते या निर्णायक क़दम उठाते देखा गया है? तब हमेशा धन के अभाव का रोना शुरू हो जाता है। नोटबन्दी के वक़्त नक़दी की कमी से जूझते लोगों का मज़ाक़ उड़ाते मोदी याद है ना! यह घटनाक्रम 2008 के वैश्विक वित्तीय संकट के बाद संकट के ज़िम्मेदार बैंकों और उनके मालिकों/प्रबन्धकों के बारे में अमेरिका में चलन में आयी कहावत – 'टू बिग टू फ़ेल, टू बिग टू जेल' की याद फिर ताज़ा कर रहा है।

टेक्स्टाइल उद्योग में हड़ताल और बोल्शेविकों का काम

*'मज़दूर बिगुल' के अगले कुछ अंकों में हम एक प्रसिद्ध पुस्तक 'रूसी दूमा में बोल्शेविकों का काम' से कुछ हिस्से प्रस्तुत करेंगे। दूमा रूस की संसद को कहते थे। एक साधारण मज़दूर से दूमा में बोल्शेविक पार्टी के सदस्य बने ए. बादायेव द्वारा लिखी करीब 100 साल पहले लिखी इस किताब से आज भी बहुत-सी चीज़ें सीखी जा सकती थीं। बोल्शेविकों ने अपनी बात लोगों तक पहुँचाने और पूँजीवादी लोकतंत्र की असलियत का भण्डाफोड़ करने के लिए संसद के मंच का किस तरह से इस्तेमाल किया इसे लेखक ने अपने अनुभवों के ज़रिए बख़ूबी दिखाया है। यहाँ हम जो अंश प्रस्तुत कर रहे हैं उनमें उस वक़्त रूस में जारी मज़दूर संघर्षों का दिलचस्प वर्णन होने के साथ ही श्रम विभाग तथा पूँजीवादी संसद की मालिक-परस्ती का पर्दाफ़ाश किया गया है जिससे यह साफ़ हो जाता है कि मज़दूरों को अपने हक़ पाने के लिए किसी क़ानूनी भ्रम में नहीं रहना चाहिए बल्कि अपनी एकजुटता और संघर्ष पर ही भरोसा करना चाहिए। इसे पढ़ते हुए पाठकों को लगेगा कि मानो इसमें जिन स्थितियों का वर्णन किया गया है वे हज़ारों मील दूर रूस में नहीं बल्कि हमारे आसपास की ही हैं। 'मज़दूर बिगुल' के लिए इस श्रृंखला को **सत्यम** ने तैयार किया है।*

तालाबन्दी के आर्थिक कारण

मज़दूर वर्ग के संघर्ष के तेज़ होने के साथ कारख़ानेदारों और उद्योगपतियों की तमाम शक्तियाँ एकजट और सक्रिय हो गयीं। मज़दूर आन्दोलन की उठती लहर से पूँजीपति घबराये हुए थे। जुर्माने, अनुशासनहीनता के नाम पर सज़ा देना, मज़दूर नेताओं की गिरफ़्तारियाँ – ये सब हथकण्डे आज़माये जा चुके थे। अब एकजुट पूँजीपतियों ने एक ज़बर्दस्त लम्बी दूर तक मार करने वाला हथियार निकाला - बड़े पैमाने पर मज़दूरों को काम से निकालना। तालाबन्दी ने हज़ारों मज़दूरों को सड़कों पर धकेल दिया और उनके सामने भुखमरी और बेघरबार होने का संकट पैदा हो गया।

रूस का कपड़ा उद्योग उस समय एक आंशिक संकट से गुज़र रहा था और कारख़ानेदारों ने इस स्थिति का फ़ायदा उठाया। जनवरी 1913 से, सेण्ट पीटर्सबर्ग की कपड़ा फ़ैक्टरियों में एक के बाद एक तालाबन्दियाँ होने लगीं, ख़ासकर बड़ी कम्पनियों में।

रोसिस्काया मिल में हड़ताल

सबसे लम्बी तालाबन्दी रोसिस्काया मिल में हुई, जहाँ 1200 मज़दूर काम करते थे। ज़ाहिर था कि मैनेजमेंट ने जानबूझकर ऐसी हालत पैदा की थी क्योंकि वह सभी ट्रेड यूनियन कार्यकर्ताओं को निकालना चाहता था। इतना ही नहीं, मालिक लोग बीस-तीस साल से कारख़ाने में काम कर रहे पुराने मज़दूरों को भी बाहर करके उनकी जगह कम उम्र वाले मज़दूरों को रखना चाहते थे।

21 जनवरी को, कार्डिंग विभाग के तीस मज़दूरों को बिना कोई नोटिस दिये यह कह दिया गया कि आज से उनकी मज़दूरी 10 कोपेक प्रतिदिन कम कर दी गयी है। अगली सुबह इस विभाग के मज़दूरों ने मज़दूरी की पुरानी दर बहाल करने के लिए हड़ताल की घोषणा कर दी। मैनेजमेंट यही तो चाहता था। उस रात जब नयी शिफ़्ट के लोग काम पर आये, तो भाप की मशीनें रोक दी गयीं, बत्तियाँ बुझा दी गयीं, और आने वाले मज़दूरों से कह दिया गया कि फ़ैक्ट्री में अनिश्चित काल तक काम बन्द रहेगा और सभी मज़दूरों का हिसाब कर दिया जायेगा। ज़ाहिर था कि मालिकान भड़कावे की कार्रवाई कर रहे हैं। तीस मज़दूरों की माँगें पूरी करने में उन्हें सिर्फ़ 3 रूबल प्रतिदिन ख़र्च करना पड़ता, लेकिन इसकी वजह से 1200 मज़दूर, जो हड़ताल में शामिल भी नहीं थे, बेरोज़गारी और भुखमरी की ओर धकेले जा रहे थे।

उकसावे में आये बिना, मज़दूर कई दिनों तक रोज़ सही समय पर फ़ैक्ट्री गेट पर हाज़िर होते रहे, लेकिनउन्हें भीतर नहीं जाने दिया गया। दो दिन बाद, गेट पर एक नोटिस लगा दी गयी कि सभी मज़दूर दफ़्तर में आकर अपना हिसाब ले जायें। शुरू में मज़दूरों ने इससे इंकार कर दिया, और बेवजह बर्खास्तगी के मुआवज़े के तौर पर दो हफ़्ते की पगार की माँग की। लेकिन मालिकों के पक्ष में दूसरी ताक़तें आ खड़ी हुईं। इलाक़े के मकान-मालिकों और व्यापारियों ने ऐलान कर दिया कि जब तक मज़दूर पुराना बकाया नहीं चुकायेंगे तब तक उन्हें न तो कमरा मिलेगा और न ही कोई सामान मिलेगा। हाल में बीते क्रिस्मस के त्यौहार के कारण मज़दूरों पर बकाये का बोझ भी ज़्यादा था। इस दबाव में, मज़दूरों को अपना हिसाब लेने के लिए मजबूर होना पड़ा। हर मज़दूर को करीब बीस रूबल मिलने थे; जोकि पूरा का पूरा स्थानीय व्यापारियों को चुकाना पड़ जाता, लेकिन इसके बदले में उन्हें कुछ और उधार मिल सकता था और वे आधा पेट खाकर कुछ दिन और गुज़ार सकते थे।

तालाबन्दी वाले दिन सुबह से ही, मिल के आसपास के इलाक़े में घबराहट और तनाव का माहौल बना हुआ था। चायख़ाने और भटियारख़ाने, उन दिनों के ''मज़दूर क्लब'', जहाँ मज़दूर मिलकर बातचीत किया करते थे, घबराये हुए लोगों से भरे हुए थे – उन्हें चिन्ता सता रही थी कि अपने परिवार सहित उन्हें भुखमरी का सामना करना पड़ेगा।

टेक्सटाइल मज़दूरों को इतनी कम मज़दूरी मिलती थी कि रोज़गार में होने पर भी वे मुश्किल से अपना गुज़ारा कर तापे थे, और बेरोज़गारी का पहला ही दिन उनके लिए भूख की सौगात लेकर आता था।

ज़्यादा वर्ग-सचेत मज़दूरों, यानी सामाजिक-जनवादी और ट्रेड यूनियन कार्यकर्ताओं ने मज़दूरों के बिखराव को दूर करने और संगठित कार्रवाई करने की कोशिशें शुरू कर दीं। 'प्राव्दा' अख़बार की कई सौ प्रतियाँ वहाँ बाँटने के लिए भेजी गयीं जिसमें मज़दूरों से हार नहीं मानने की अपील की गयी थी। मिल में हुई घटनाओं पर चर्चा करने के लिए मीटिंग करने की कोशिश की गयी लेकिन थोड़े से लोगों के भी इकट्ठा होते ही पुलिस उन्हें तितर-बितर कर देती थी।

तालाबन्दी के कारण पैदा हुई दहशत और हताशा का पहला झटका कुछ कम होने के साथ ही मज़दूरों की सोच बदलने लगी। अब वे लम्बी लड़ाई की तैयारी करने लगे, और पुलिस के रोकने के बावजूद तालाबन्दी के शिकार लोगों की मीटिंग बुलायी गयी। यह फ़ैसला किया गया कि निकाले गये सभी मज़दूर एक-दूसरे से सम्पर्क में रहेंगे, सेंट पीटर्सबर्ग के सभी मज़दूरों के नाम अपील जारी की जायेगी, तालाबन्दी के दौरान शराब पीने के विरुद्ध सब मिलकर संघर्ष करेंगे, और मज़दूर शिक्षा मण्डलों से नि:शुल्क कक्षाएँ लेने के लिए अनुरोध किया जायगा। कोई भी स्त्री या पुरुष मज़दूर फ़ैक्ट्री गेट पर जाकर अपने लिए, या दूसरे मज़दूरों के लिए दया की भीख नहीं माँगेगा। जब फ़ैक्ट्री फिर से खुलेगी, तो जब तक सारे मज़दूरों को वापस नहीं लिया जायेगा तब तक कोई मज़दूर काम पर नहीं जायेगा।

फ़ैक्ट्री इंस्पेक्टरों का रवैया

मालिकों ने सरकारी नियमों का उल्लंघन करके अचानक तालाबन्दी की थी, इसलिए मज़दूरों ने फ़ैक्ट्री इंस्पेक्टर के पास आवेदन किया, जो कम से कम कहने के लिए मज़दूरों के हितों की रक्षा के लिए वहाँ मौजूद था। सेंट पीटर्सबर्ग के सीनियर फ़ैक्ट्री इंस्पेक्टर के दफ़्तर में हुई बातचीत बहुत साफ़ तौर पर ये दिखा देती है कि वह वास्तव में किसके हितों की ''रक्षा'' कर रहा था।

अपने मामले को लेकर इंस्पेक्टर के पास गये टेक्सटाइल यूनियन के प्रतिनिधियों से उसने कहा: ''मैं किसी ट्रेड यूनियन संगठन के साथ कोई बातचीत नहीं कर सकता। क़ानून के मुताबिक, मैं सिर्फ़ उस कारख़ाने के मज़दूरों के साथ ही मामले पर चर्चा कर सकता हूँ जहाँ पर विवाद हुआ है।''

प्रतिनिधिमण्डल ने कहा, ''लेकिन हम भी क़ानून का पालन कर रहे हैं। क़ानूनी अधिकारियों ने हमारी नियमावली को मंज़ूरी दी है जिसके अनुसार यूनियन को अपने सदस्यों के हितों के लिए निजी व्यक्तियों तथा सरकार के अफ़सरों, दोनों के साथ वार्ता करने का अधिकार है।''

इन दो परस्पर-विरोधी ''क़ानूनी अधिकारों'' के बीच टकराव आख़िरकार इस संयोग के चलते हल हो गया कि निकाला गया एक मज़दूर यूनियन का प्रतिनिधि भी था। इसके बाद फ़ैक्ट्री इंस्पेक्टर बातचीत के लिए राज़ी हो गया। बातचीत करीब दो घण्टे चली जिसमें इंस्पेक्टर अपनी हत्थेदार कुर्सी पर आराम से पसरा हुआ था, जबकि यूनियन के प्रतिनिधि, हाथ में अपनी टोपियाँ लिये हुए, मज़दूर हितों के उस ''रक्षक'' के सामने खड़े रहे।

इंस्पेक्टर बोला, ''जहाँ तक मज़दूरों के साथ पुलिस की ज़ोर-ज़बर्दस्ती और फ़ैक्ट्री गेट पर जाने वालों की पिटाई का सवाल है, इसके बारे में आपको पुलिस कप्तान से शिकायत करनी चाहिए। इससे मेरा कोई लेना-देना नहीं है और मैं आपकी कोई मदद नहीं कर सकता।''

लेकिन जल्दी ही यह साफ़ हो गया कि वह कारख़ाना मैनेजमेंट की कार्रवाइयों में भी कोई हस्तक्षेप नहीं करने वाला था। उसका सोचना था कि सबकुछ बिल्कुल ठीकठाक था। मज़दूरों को तालाबन्दी से पहले एक पखवाड़े की मज़दूरी एडवांस पाने का कोई अधिकार नहीं था। तालाबन्दी का फ़ैसला फ़ैक्ट्री मालिकों ने ख़ुद लिया था और उसके विभाग को इसे रोकने का अधिकार नहीं था। अन्त में उसने कहा, ''तुम लोगों का केस कमज़ोर है।''

फ़ैक्ट्री इंस्पेक्टर से मुलाकात ने एक बार फिर यह दिखा दिया कि रूस के क़ानून किसके द्वारा और किसके लिए बनाये गये थे। मज़दूर केवल अपने आप पर और सेंट पीटर्सबर्ग के सर्वहारा वर्ग की बिरादराना सहायता पर भरोसा कर सकते थे। और उन्होंने यह मदद हासिल की। तालाबन्दी के शिकार हुए स्त्री और पुरुषों – ठीक उसी समय पर एक और बड़ी कॉटन मिल से भी 2000 मज़दूर इसी तरह से निकाले गये थे – की मदद के लिए शहर के मज़दूर जिस तरह से सामने आये, उसने दिखा दिया कि मज़दूर वर्ग के बीच एकजुटता की भावना काफ़ी मज़बूत है। मज़दूरों ने अच्छी तरह समझ लिया था कि एक फ़ैक्ट्री में होने वाला संघर्ष वास्तव में पूरे मज़दूर वर्ग का संघर्ष है।

सेंट पीटर्सबर्ग के मज़दूरों से मिली मदद

टेक्स्टाइल कारख़ानों में होने वाली तालाबन्दी से सेंट पीटर्सबर्ग के सारे मज़दूरों में आक्रोश फैल गया था। कुछ जगहों पर आन्दोलन की अगुवाई अराजकतावादी तत्व कर रहे थे जिन्होंने मशीनें तोड़ने, आगज़नी और दूसरे आतंककारी तरीकों के ज़रिए इसका जवाब देने के लिए मज़दूरों का आह्वान किया। सामाजिक-जनवादियों ने ऐसे तौर-तरीकों का हमेशा विरोध किया था और इन्हें मज़दूर आन्दोलन के लिए बेकार और नुकसानदेह मानते थे। अच्छी बात यह थी कि थोड़े ही लोग अराजकतावादियों का समर्थन करते थे और हमने जल्दी ही इन प्रवृत्तियों को दूर कर दिया।

टेक्सटाइल मज़दूरों को सेंट पीटर्सबर्ग के सर्वहारा वर्ग की ओर से मिलने वाली सहायता एक और रूप में भी सामने आयी। जल्दी ही सभी कारख़ानों और वर्कशॉपों में बर्खास्त मज़दूरों की मदद के लिए चन्दा जुटाना

(पेज 10 पर जारी)

धार्मिक बँटवारे की साज़िशों को नाकाम करो! पूँजीवादी लूट के ख़िलाफ़ एकता क़ायम करो!

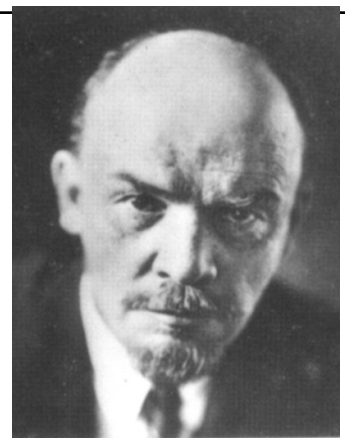

''प्रतिक्रियावादी बुर्जुआ वर्ग हर जगह धार्मिक झगड़ों को उभाड़ने के दुष्कृत्यों में संलग्न रहा है, और वह रूस में भी ऐसा करने जा रहा है—इसमें उसका उद्देश्य आम जनता का ध्यान वास्तविक महत्व की और बुनियादी आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं से हटाना है जिन्हें अब समस्त रूस का सर्वहारा वर्ग क्रान्तिकारी संघर्ष में एकजुट हो कर व्यावहारिक रूप से हल कर रहा है। सर्वहारा की शक्तियों को बाँटने की यह प्रतिक्रियावादी नीति, जो आज ब्लैक हंड्रेड (राजतंत्र समर्थक गिरोहों) द्वारा किये हत्याकाण्डों में मुख्य रूप से प्रकट हुई है, भविष्य में और परिष्कृत रूप ग्रहण कर सकती है। हम इसका विरोध हर हालत में शान्तिपूर्वक, अडिगता और धैर्य के साथ सर्वहारा एकजुटता और वैज्ञानिक दृष्टिकोण की शिक्षा द्वारा करेंगे—एक ऐसी शिक्षा द्वारा करेंगे जिसमें किसी भी प्रकार के महत्वहीन मतभेदों के लिए कोई स्थान नहीं है। क्रान्तिकारी सर्वहारा, जहाँ तक राज्य का सम्बन्ध है, धर्म को वास्तव में एक व्यक्तिगत मामला बनाने में सफल होगा। और सर्वहारा वर्ग इस राजनीतिक प्रणाली में, जिसमें मध्यकालीन सड़न साफ हो चुकी होगी, आर्थिक ग़ुलामी के उन्मूलन के लिए व्यापक और खुला संघर्ष चलायेगा जो कि मानव जाति के धार्मिक शोषण का वास्तविक स्रोत है।''

— लेनिन (समाजवाद और धर्म)

''आधुनिक पूँजीवादी देशों में धर्म की ये जड़ें मुख्यतः सामाजिक हैं। आज धर्म की सबसे गहरी जड़ मेहनतकश अवाम की सामाजिक रूप से पददलित स्थिति और पूँजीवाद की अन्धी शक्तियों के समक्ष उसकी प्रकटतः पूर्ण असहाय स्थिति है, जो हर रोज़ और हर घण्टे सामान्य मेहनतकश जनता को सर्वाधिक भयंकर कष्टों और सर्वाधिक असभ्य अत्याचारों से संत्रस्त करती है, और ये कष्ट और अत्याचार असामान्य घटनाओं—जैसे युद्धों, भूचालों, आदि—से उत्पन्न कष्टों से हज़ारों गुना अधिक कठोर हैं। 'भय ने देवताओं को जन्म दिया।' पूँजी की अन्धी शक्तियों का भय—अन्धी इसलिए कि उन्हें सर्वसाधारण अवाम सामान्यतः देख नहीं पाता—एक ऐसी शक्ति है जो सर्वहारा वर्ग और छोटे मालिकों की ज़िन्दगी में हर कदम पर ''अचानक'', ''अप्रत्याशित'', ''आकस्मिक'', तबाही, बरबादी, ग़रीबी, वेश्यावृत्ति और भूख से मृत्यु का ख़तरा ही नहीं उत्पन्न करती, बल्कि इनसे अभिशप्त भी करती है।

ऐसा है आधुनिक धर्म का मूल जिसे प्रत्येक भौतिकवादी को सबसे पहले ध्यान में रखना चाहिए, यदि वह बच्चों के स्कूल का भौतिकवादी नहीं बना रहना चाहता। जनता के दिमाग़ से, जो कठोर पूँजीवादी श्रम द्वारा दबी-पिसी रहती है और जो पूँजीवाद की अन्धी विनाशकारी शक्तियों की दया पर आश्रित रहती है, शिक्षा देने वाली कोई भी किताब धर्म का प्रभाव तब तक नहीं मिटा सकती, जब तक कि जनता धर्म के इस मूल से स्वयं संघर्ष करना, पूँजी के शासन के सभी रूपों के ख़िलाफ़ ऐक्यबद्ध, संगठित, सुनियोजित और सचेत ढंग से संघर्ष करना नहीं सीख लेती।''

— लेनिन (धर्म के प्रति मज़दूरों की पार्टी का रुख)

"लोगों को आपस में लड़ने से रोकने के लिए वर्ग-चेतना की ज़रूरत है। ग़रीब मेहनतकश व किसानों को स्पष्ट समझा देना चाहिए कि तुम्हारे असली दुश्मन पूँजीपति हैं, इसलिए तुम्हें इनके हथकण्डों से बचकर रहना चाहिए और इनके हत्थे चढ़ कुछ न करना चाहिए। संसार के सभी ग़रीबों के, चाहे वे किसी भी जाति, रंग, धर्म या राष्ट्र के हों, अधिकार एक ही हैं। तुम्हारी भलाई इसी में है कि तुम धर्म, रंग, नस्ल और राष्ट्रीयता व देश के भेदभाव मिटाकर एकजुट हो जाओ और सरकार की ताक़त अपने हाथ में लेने का यत्न करो। इन यत्नों में तुम्हारा नुक़सान कुछ नहीं होगा, इससे किसी दिन तुम्हारी ज़ंजीरें कट जायेंगी और तुम्हें आर्थिक स्वतन्त्रता मिलेगी।"

— भगतसिंह (साम्प्रदायिक दंगे और उनका इलाज)

"एक तरफ जहाँ जन आन्दोलन और राष्ट्रीय आन्दोलन हुए, वहीं, उनके साथ-साथ जातिगत और साम्प्रदायिक आन्दोलनों को भी जान-बूझकर शुरू किया गया क्योंकि ये आन्दोलन न तो अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ थे, न किसी वर्ग के, बल्कि ये दूसरी जातियों के ख़िलाफ़ थे।"

— साम्प्रदायिक जुनून का मुकाबला करते हुए शहीद होने वाले महान राष्ट्रवादी पत्राकार गणेशशंकर विद्यार्थी

"जब तक लोग अपनी स्वतंत्रता का इस्तेमाल करने की ज़हमत नहीं उठायेंगे, तब तक तानाशाहों का राज चलता रहेगा; क्योंकि तानाशाह सक्रिय और जोशीले होते हैं, और वे नींद में डूबे हुए लोगों को ज़ंजीरों में जकड़ने के लिए, ईश्वर, धर्म या किसी भी दूसरी चीज़ का सहारा लेने में नहीं हिचकेंगे।"

— फ्रांसीसी क्रान्ति की वैचारिक नींव तैयार करने वाले महान दार्शनिकों में से एक — वोल्तेयर

ये देखिये, मोदी के गुरु जी के विचार क्या थे!

"हिन्दुओ, ब्रिटिश से लड़ने में अपनी ताक़त बर्बाद मत करो। अपनी ताक़त हमारे भीतरी दुश्मनों यानी मुसलमानों, ईसाइयों और कम्युनिस्टों से लड़ने के लिए बचाकर रखो।"

— एम.एस. गोलवलकर
(आर.एस.एस. के दूसरे सर संघचालक)

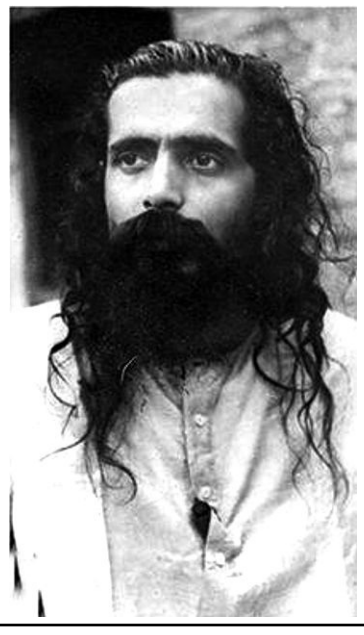

और ये कहना था कि गुरुजी के गुरु का!

"लोगों पर नियंत्रण करने और उन्हें पूरी तरह अपने वश में कर लेने का सबसे अच्छा तरीक़ा यह है कि उनकी आज़ादी थोड़ी-थोड़ी छीनी जाये, अधिकारों को एक हज़ार छोटी-छोटी और पता भी न चलने वाली कटौतियों से कम किया जाये। इस तरीक़े से, लोगों को इन अधिकारों और स्वतंत्रताओं के छिनने का पता ही नहीं चलेगा और जब उन्हें पता चलेगा तब तक इन बदलावों को वापस लौटाना नामुमकिन हो जायेगा।"

— एडोल्फ़ हिटलर, 'माइन कैम्फ़' (आत्मकथा) में

7 नवम्बर : जीतों के दिन की शान में गीत

पाब्लो नेरूदा

पाब्लो नेरूदा के बारे में : *पाब्लो नेरूदा 1904 में चीले में पैदा हुए। उनकी कविताएँ न सिर्फ़ चीले की बल्कि साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्षरत पूरी लातिन अमेरिकी जनता की अमूल्य विरासत और संघर्ष का एक हथियार है। लातिन अमेरिका में उनका वही दर्जा है जो तुर्की में नाज़िम हिकमत का, स्पेन में लोर्का का। उनकी कविताएँ सोवियत क्रान्ति, स्पेन में जनता और इण्टरनेशनल ब्रिगेड के फासीवाद-विरोधी संघर्ष, सोवियत संघ द्वारा नात्सियों के मानमर्दन और चीले तथा अन्य लातिन अमेरिकी देशों में तानाशाही और दमन के विरुद्ध जनता के शानदार संघर्षों की साक्षी और भागीदार कविताएँ हैं। उनकी कविताएँ शिक्षित करती हैं, आह्वान करती हैं, ऐक्यबद्ध करती हैं और अन्तिम जीत की राह दिखाती हैं। जीवन, संघर्ष और सृजन का यह कवि लातिनी जनता के दिलों में आज अपनी मृत्यु के 45 वर्षों बाद भी जीवित है और साम्राज्यवाद के विरुद्ध लड़ने के लिए प्रेरणा देता रहता है। तानाशाह धमकियों और नजरबन्दियों द्वारा जीवित रहते नेरूदा को चुप नहीं करा सके और मरने के बाद उसके घर को गिरा देने और उसकी किताबों पर प्रतिबन्ध लगा देने के बावजूद उसकी कविताओं को जनता से अलग नहीं कर सके। आज भी, बदस्तूर, वे नेरूदा की कविताओं से डरते हैं। यह कविता पाब्लो नेरूदा ने 1941 में लिखी थी, जब अक्टूबर क्रान्ति की 24वीं वर्षगाँठ और स्पेनी गणराज्य की उपरोक्त विजय की पाँचवीं वर्षगाँठ थी। 7 नवम्बर को दोहरी वर्षगाँठ बतलाये जाने का कारण यह है कि सोवियत समाजवादी क्रान्ति दिवस होने के साथ-साथ इसी दिन मैड्रिड के द्वार से तानाशाह फ्रांको की सेना को (अस्थाई तौर पर) पीछे लौटने को बाध्य कर दिया गया था।*

यह दोहरी वर्षगाँठ, यह दिन, यह रात,
क्या वे पायेंगे एक ख़ाली-ख़ाली-सी दुनिया,
क्या उन्हें मिलेगी
उदास दिलों की एक बेढब-सी घाटी ?
नहीं, महज़ एक दिन नहीं घण्टों से बना हुआ,
जुलूस है यह आईनों और तलवारों का,
यह एक दोहरा फूल है आघात करता हुआ
रात पर लगातार
जब तक कि फाड़कर निशा-मूलों को
पा न ले सूर्योदय !
स्पेन का दिन आ रहा है
दक्षिण से, एक पराक्रमी दिन
लोहे के पंखों से ढका हुआ,
तुम आ रहे हो उधर से,
उस आख़िरी आदमी के पास से
जो गिरता है धरती पर
अपने चकनाचूर मस्तक के साथ
और फिर भी उसके मुँह में है
तुम्हारा अग्निमय अंक !
और तुम वहाँ जाते हो हमारी
अनडूबी स्मृतियों के साथ :
तुम थे वो दिन, तुम हो
वह संघर्ष, तुम बल देते हो
अदृश्य सैन्य-दस्ते को, उस पंख को
जिससे उड़ान जन्म लेगी, तुम्हारे अंक के साथ !
सात नवम्बर, कहाँ रहते हो तुम ?
कहाँ जलती हैं पंखुड़ियाँ, कहाँ है तुम्हारी फुसफुसाहट
कहती है बिरादर से : आगे बढ़ो, ऊपर की ओर !
और गिरे हुए से : उठो !
कहाँ रक्त से पैदा होता है तुम्हारा जयपत्र
और भेदता है इन्सान की कमज़ोर देह को
और ऊपर उठता है
गढ़ने के लिए एक नायक ?
तुम्हारे भीतर, एक बार फिर, ओ सोवियत संघ,
तुम्हारे भीतर, एक बार फिर,
विश्व की जनता की बहन,
निर्दोष और सोवियत पितृभूमि। लौटता है

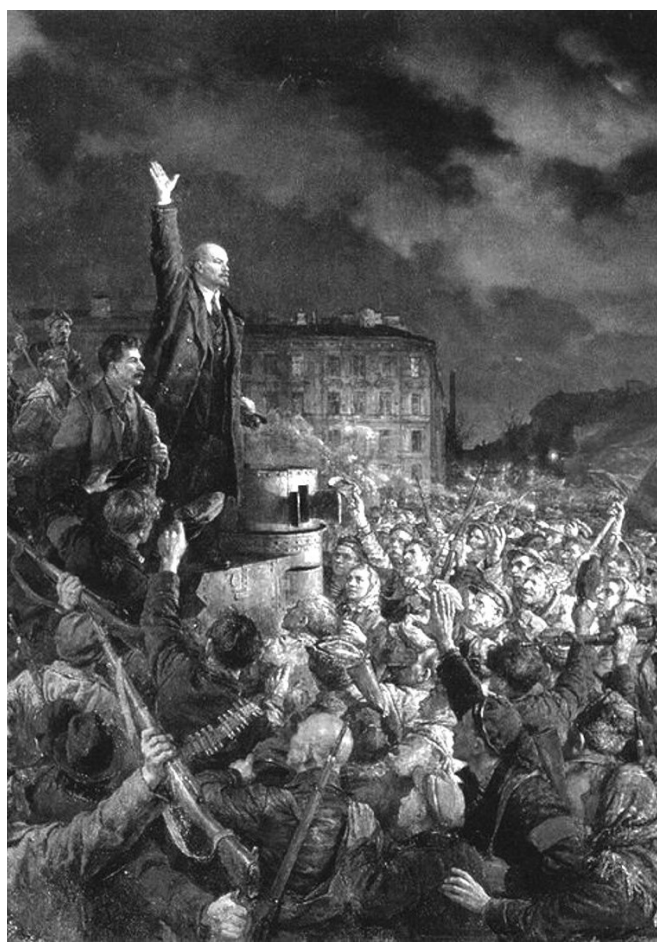

तुम तक तुम्हारा बीज
पत्तों की एक बाढ़ की शक्ल में,
बिखरा हुआ समूची धरती पर !
तुम्हारे लिए नहीं हैं आँसू, लोगो,
तुम्हारी लड़ाई में !
सभी को होना है लोहे का,
सभी को आगे बढ़ना है
और ज़ख़्मी होना है,
सभी को, छुई न जा सकने वाली चुप्पी को भी,
सन्देह को भी,
यहाँ तक कि उस सन्देह को भी
जो अपने सर्द हाथों से
जकड़कर जमा देता है हमारे हृदय
और डुबो देता है उन्हें,
सभी को, ख़ुशी को भी, होना है लोहे का
तुम्हारी मदद करने के लिए, विजय में,
ओ माँ, ओ बहन !
थूका जाए आज के ग़द्दार के मुँह पर !

नीच को दण्ड मिले आज, इस विशेष
घण्टे के दौरान, उसके सम्पूर्ण कुल को,
कायर वापस लौट जायें
अँधेरे में, जयपत्र जायें पराक्रमी के पास,
एक पराक्रमी प्रशस्त पथ, बर्फ़ और रक्त के
एक पराक्रमी जहाज़ के पास,
जो हिफ़ाज़त करता है दुनिया की
आज के दिन तुम्हें शुभकामनाएँ देता हूँ
सोवियत संघ,
विनम्रता के साथ: मैं एक लेखक हूँ और एक कवि।
मेरे पिता रेल मज़दूर थे : हम हमेशा ग़रीब रहे।
कल मैं तुम्हारे साथ था, बहुत दूर,
भारी बारिशों वाले
अपने छोटे से देश में। वहाँ तुम्हारा नाम
तपकर लाल हो गया,
लोगों के दिलों में जलते-जलते
जब तक कि वह मेरे देश के ऊँचे आकाश को
छूने नहीं लगा।
आज मैं उन्हें याद करता हूँ, वे सब तुम्हारे साथ हैं !
फ़ैक्ट्री-दर-फ़ैक्ट्री घर-दर-घर
तुम्हारा नाम उड़ता है लाल चिड़िया की तरह।
तुम्हारे वीर यशस्वी हों और हरेक बूँद
तुम्हारे ख़ून की। यशस्वी हो हृदयों की
बह-बह निकलती बाढ़
जो तुम्हारे पवित्र और गौरवपूर्ण आवास की
रक्षा करते हैं !
यशस्वी हो वह बहादुरी भरी और कड़ी
रोटी जो तुम्हारा पोषण करती है,
जब समय के द्वार खुलते हैं
ताकि जनता और लोहे की तुम्हारी फौज
मार्च कर सके, गाते हुए
राख और उजाड़ मैदानों के बीच से,
हत्यारों के ख़िलाफ़,
ताकि रोप सके एक ग़ुलाब
चाँद जितना विशाल
जीत की सुन्दर और पवित्र धरती पर !

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2017-2019
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग़, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 20, प्रत्येक माह

मोदी राज में बैंकिंग व वित्तीय सेक्टर के घपले-घोटाले और गहराता आर्थिक संकट

– मुकेश असीम

अगस्त-सितम्बर महीने के घटनाक्रम, जिसे कई आर्थिक जानकार शुरू से ही भारत का लीमान ब्रदर्स मान रहे थे, को शुरू में पर्दे के पीछे से ही एलआईसी व एसबीआई के ज़रिये सँभालने के प्रयास और प्रकट में किसी वित्तीय संकट से इंकार करते रहने के बाद आखिर 1 अक्टूबर को केन्द्र सरकार ने इंफ्रास्ट्रक्चर लीज़िंग एण्ड फ़ाइनैनशियल सर्विसेज (आईएलएफ़एस) नामक समूह को अपने नियन्त्रण में ले लिया। उसने कम्पनी के निदेशक बोर्ड को भंग कर देश के सबसे अमीर वित्तीय पूँजीपति उदय कोटक सहित 6 सदस्यों का एक नया बोर्ड बनाया है जो इस संकट को फ़ौरी तौर पर सँभालने और फिर इसके स्थाई बन्दोबस्त की ज़िम्मेदारी सँभालेगा। सरकारी बयान के मुताबिक़ आईएलएफ़एस देश की वित्तीय व्यवस्था व स्थिरता के लिए एक बड़ी अहम संस्था है, जिसमें संकट पूरी वित्तीय व्यवस्था को संकट में ला सकता है। अब सरकार ने सभी वित्तीय संस्थानों को कहा है कि वे आईएलएफ़एस के लिए पर्याप्त नक़दी की व्यवस्था करें।

यह कम्पनी बैंकों की तरह जनता से सीधे जमा राशि नहीं लेती। इसके बजाय वह दूसरी औद्योगिक-वित्तीय संस्थाओं, म्यूचुअल, पेंशन, प्रोविडेण्ट फ़ण्ड, आदि से जमा, डिबैंचर, बॉण्ड्स, आदि लेकर उन्हें सड़क, बिजली, रेललाइन, बाँध जैसे आधारभूत उद्योगों में शेयर पूँजी तथा क़र्ज़ देने में निवेश करती है। इसके लिए इस समूह में 169 कम्पनी हैं जिनके ज्ञात निवेश 115000 हज़ार करोड़ और जिन पर क़र्ज़ 91 हज़ार करोड़ रुपये है। लेकिन आईएलएफ़एस के प्रोजेक्ट सही से क्रियान्वित नहीं हो पा रहे थे और इसे इनसे प्रत्याशित आय नहीं हो रही थी। अतः नक़दी की कमी के अभाव में अगस्त-सितम्बर के महीनों में यह कम्पनी अपनी देनदारियाँ नहीं चुका पा रही थी। पूँजीवादी व्यवस्था में क़र्ज़ का जाल मानव शरीर में रक्त नलिकाओं के जाल की तरह फैला होता है। इन क़र्ज़ देने वालों ने भी आगे लिया क़र्ज़ चुकाना होता है और इन्हें भुगतान न मिलने से चौतरफ़ा संकट का माहौल बन जाता है। 21 सितम्बर को संकट देख आईएलएफ़एस के प्रबन्ध निदेशक रवि बावा व 4 अन्य निदेशकों ने भी इस्तीफ़ा दे दिया। यह भी सामने आया कि इस कम्पनी को 26 हज़ार करोड़ का भुगतान एक वर्ष के अन्दर ही करना है जिसमें यह सक्षम नहीं। इससे म्यूचुअल फ़ण्ड्ज में घबराहट फैल गयी क्योंकि उन पर भी आगे देय भुगतान का दबाव था। इन्होंने नक़दी की कमी के दबाव में अपनी कुछ वित्तीय सम्पत्तियों को बहुत सस्ती क़ीमत में बेच दिया। इससे यह बात आग की तरह फैली कि बहुत सारी ग़ैर-बैंकिंग वित्तीय कम्पनियाँ नक़दी की कमी और भुगतान के दबाव का सामना कर रही हैं। शेयर बाज़ार के सूचकांक में भी कुछ मिनटों में ही 1500 अंक की गिरावट हो गयी।

वित्तीय बाज़ारों और सरकार दोनों में घबराहट का आलम ये था कि 21 सितम्बर को पूँजी बाज़ारों में 1500 अंक तक की गिरावट से मचे हाहाकार के बाद 23 सितम्बर को इतवार के रोज़ बैंकिंग नियामक रिज़र्व बैंक और पूँजी बाज़ार नियामक सेबी दोनों को अपने दफ़्तर खोलकर संयुक्त वक्तव्य जारी करना पड़ा कि घबरायें नहीं, उनकी घटनाक्रम पर पूरी तथा पैनी नज़र है, कुछ गड़बड़ होते ही वे सब सँभाल लेंगे। एसबीआई से भी बयान जारी करवाया गया कि वह वित्तीय कम्पनियों को उधार देना जारी रखेगा। 24 सितम्बर को सुबह-सवेरे ही ख़ुद वित्त मन्त्री को बयान देना पड़ा कि बाज़ार में नक़दी की कमी नहीं होने देंगे। मगर शेयर बाज़ार में फिर भी 536 अंकों की गिरावट हो गयी। हालत यह बनी कि बाज़ार में किसी को किसी की साख पर क़तई भरोसा नहीं रहा। पेंशन-पीएफ़ से म्यूचुअल फ़ण्ड तक सब दिये गये उधार की समय पर वापसी न होने से हाथ जला चुके थे। सबसे अधिक साखदार मानी जाने वाली कम्पनियों को भी एक साल के लिए 10-11% ब्याज पर उधार लेना पड़ रहा था, दोयम दर्जे की कम्पनियों के लिए तो ब्याज दर 12% पार कर गयी। इससे पूँजीपति तबक़े में ऐसी विकलता फैली कि हमेशा सार्वजनिक क्षेत्र की अक्षमता का रोना रोकर निजीकरण की माँग करने वाले कॉर्पोरेट कारोबारी विशेषज्ञ और भोंपू मीडिया भी बेचैन होकर सरकार द्वारा बचाव की ऐसी गुहार लगाने लगे कि 25 सितम्बर की शाम तक सरकार की ओर से एलआईसी ने ऐलान कर दिया कि वह आईएलएफ़एस को संकट से बचाने में कोई कोर-कसर न छोड़ेगी, चाहे उसे कितनी ही पूँजी झोंकनी पड़े।

आईएलएफ़एस के घटनाक्रम के इतना बड़ा तूफ़ान खड़ा करने की वजह है कि वित्तीय बाज़ारों में चिन्ता का माहौल पहले से ही बना हुआ था। 19 सितम्बर को रिज़र्व बैंक ने यस बैंक के मुखिया राणा कपूर का कार्यकाल दो साल कम करने का आदेश दिया था। वजह थी अनियमितताएँ, नियमों का उल्लंघन और डूबे क़र्ज़ों को छिपाना। इसके पहले एक्सिस बैंक की शिखा शर्मा को भी हटाने का आदेश ऐसी ही वजहों और डूबे क़र्ज़ या एनपीए छिपाने के लिए दिया गया था।

आईसीआईसीआई बैंक की मुखिया चन्दा कोचर के ख़िलाफ़ जाँच चल ही रही है; साथ ही खातों में एनपीए छिपाने का भी खुलासा आरबीआई कर ही चुका है। इससे यह स्पष्ट हो गया था कि भारतीय अर्थव्यवस्था में गहराता संकट शुरू में सरकारी बैंकों में 12 लाख करोड़ रुपये के डूबे क़र्ज़ के रूप में नज़र ज़रूर आया था, मगर वहाँ तक सीमित रहने वाला नहीं है, तथा बड़े निजी बैंक एवं अन्य वित्तीय संस्थान भी इसकी जद में तेज़ी से आ रहे हैं। वजह है कि संकट असल में पूँजीवादी व्यवस्था में है - निजी या सरकारी मालिकाने या प्रबन्धन से इसका चरित्र और असर बदल नहीं सकता।

इसके पहले कि हम इस संकट की वजहों की ओर गहराई से पड़ताल करें, हम आईएलएफ़एस के बारे में कुछ जान लेते हैं। इसमें सबसे ज़्यादा 40% शेयर एलआईसी व सरकारी बैंकों के हैं। इसके 5 निदेशक भी सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनियों द्वारा नियुक्त हैं और इनकी सहमति बग़ैर कोई स्वतन्त्र निदेशक नियुक्त नहीं किया जा सकता। किन्तु इतनी सार्वजनिक पूँजी के बावजूद इसे निजी क्षेत्र की कम्पनी की तरह चलाया जाता रहा है। 1992 में स्थापना के शुरू से अब तक रवि पार्थसारथी ही इसके मुख्य कार्याधिकारी रहे, पिछले वर्ष उनका सालाना वेतन ही 30 करोड़ रुपये से ऊपर था, भत्ते व अन्य सुविधाएँ इसके अतिरिक्त। मगर जब कम्पनी डूबने लगी तो इसी जुलाई के महीने में सेहत के बहाने सेवानिवृत्त हो गये! शेयर पूँजी के अतिरिक्त भी सार्वजनिक क्षेत्र ने इसमें और भी तरह से निवेश किया, सरकारी विभागों ने इसे ठेके दिये, पब्लिक प्राइवेट पार्टनरशिप वाला ढर्रा इसने ही शुरू किया अर्थात सारा जोखिम तो सार्वजनिक रहा पर मुनाफ़े निजी क्षेत्र के पार्टनरों में बँटते गये। आईएलएफ़एस ने 169 ज्ञात सहायक कम्पनियों की एक वित्तीय भूलभुलैया या कहिए मकड़ी का जाला खड़ा किया जिसमें फँसाकर वह सार्वजनिक सम्पत्ति को लूटती आयी है। इसके घातक पंजे सड़क, रेल, बन्दरगाह, विद्युत, पुल, बाँध जैसे हर आधारभूत उद्योग में फैले हैं। मोदी गुजरात में जो गिफ्ट सिटी नामक अन्तरराष्ट्रीय वित्तीय केन्द्र बना रहे हैं, उसमें भी यह मुख्य साझीदार है और इसे 880 एकड़ ज़मीन 1 रु प्रति एकड़ की दर पर दी गयी है। यह कम्पनी बैंकों, म्यूचुअल फ़ण्ड, बीमा कम्पनियों, आदि से क़र्ज़ लेकर सड़क, हवाई अड्डा, बाँध, विद्युत संयन्त्र, आदि जैसे ढाँचागत उद्योगों को क़र्ज़ भी देती है, और ख़ुद के मालिकाने में चलाती भी है। जहाँ यह क़र्ज़ देती है, वहाँ इसके मूल्यांकन के बाद अन्य बैंक भी और क़र्ज़ देते हैं जो सम्भवतः डेढ़ लाख करोड़ रुपये के फेर में हैं। अब इस कम्पनी पर नक़दी की कमी के संकट से ये प्रोजेक्ट भी संकट में पड़ेंगे, जिनसे बैंकों का अन्य क़र्ज़ भी डूब जायेगा।

एक ओर बात जो आईएलएफ़एस के बारे में सामने आयी है कि इसका संकट कोई नया नहीं है। यह 2011-12 में शुरू हुआ तथा 2014 तक आते ही यह दिवालिया हो चुकी थी। किन्तु संकट को टालने के लिए पूँजीवादी अकाउंटिंग की अद्भुत बाजीगरी का सहारा लिया गया – अर्थात बड़ी मात्रा में अमूर्त सम्पत्ति जिसे अंग्रेज़ी में Intangibles कहा जाता है। इसके अन्तर्गत साख, सुनाम, सद्भाव, ख्याति, बौद्धिक सम्पत्ति, भविष्य में आय की आशा, आदि आते हैं जिनका वास्तव में कोई कारोबारी मूल्य नहीं होता मगर पूँजीवादी कारोबारी विशेषज्ञ इसका भी मूल्य निर्धारित कर देते हैं। उदाहरण के लिए माल्या की किंगफ़िशर की ख्याति के मूल्य के आधार पर भी उसे क़र्ज़ मिला था, मगर वास्तव में उसका मूल्य शून्य था और रहा। यहाँ स्थिति उससे भी बहुत आगे थी और यह हवाई सम्पत्तियाँ बढ़ते-बढ़ते 26 हज़ार करोड़ पर पहुँच चुकी थीं, जबकि इसके मालिकों की कुल निवेशित पूँजी लगभग 4 हज़ार करोड़ रुपये ही थी। इसके बल पर यह वित्तीय रूप से मज़बूत कम्पनियों में गिनी जाती रही और बाज़ार से क़र्ज़ और सरकार से प्रोजेक्ट पाती रही जबकि कोई साधारण बैलेंस शीट देखने वाला भी बता देता कि यह सब फ़र्जी सम्पत्ति है। ऐसे छल-कपट पूँजीवादी कारोबारी दुनिया में कोई अजूबी बात नहीं।

आईएलएफ़एस द्वारा क़र्ज़ के भुगतान में असफल रहने से कई सारे म्यूचुअल फ़ण्ड की स्थिति तो खराब है ही, पर और भी भयंकर स्थिति है कर्मचारी भविष्य निधि, पेंशन और बीमा के पैसे की। इसे क़र्ज़ देने वाले कुछ नाम देखिए – नेशनल पेंशन स्कीम ट्रस्ट, एसबीआई एम्प्लॉईज पेंशन फ़ण्ड, एसबीआई एम्प्लॉईज पीएफ़ ट्रस्ट, डाक जीवन बीमा, एलआईसी, जीआईसी, ओरिएण्टल इन्शुरेंस, आदि। अतः इसके डूबने से म्यूचुअल फ़ण्ड व बीमा से लेकर पीएफ़/पेंशन तक बहुत से मध्यवर्गीय व निम्नमध्यवर्गीय लोगों की बचत और रिटायरमेण्ट के सपनों पर बुरी तरह चोट पड़ने वाली है। अभी आगामी चुनाव के पहले यह भाण्डा किसी तरह फूटने से रोकने के लिए ही पहले एलआईसी को मैदान में उतारा गया था जो बीमा धारकों की बचत के पैसे से इसको तुरन्त दिवालिया होने से बचाने के लिए कई हज़ार करोड़ रुपये की पूँजी और देगा, जिससे यह अपनी तुरन्त की देनदारियाँ चुका सके। यह भी ख़बर आयी कि आईएलएफ़एस ने एलआईसी को 4500 करोड़ और एसबीआई को 3500 करोड़ रुपये की फ़ौरी मदद का इन्तज़ाम करने के लिए भी कहा है। इसके अतिरिक्त शेयर धारकों को भी 4500 करोड़ रुपये की और पूँजी लगाने के लिए कहा गया है अर्थात यहाँ भी लगभग 2000 करोड़ रुपये सार्वजनिक क्षेत्र से आयेंगे। पर इससे यह संकट कब तक टलता?

संकटमोचक की भूमिका निभा रहे सार्वजनिक क्षेत्र के सबसे बड़े वित्तीय संस्थान एलआईसी की ख़ुद की स्थिति जान लेना भी ज़रूरी है। अभी कुछ दिन पहले ही दिवालिया हो चुके आईडीबीआई बैंक को उबारने के लिए भी सरकार एलआईसी को ही आगे लायी थी। संकट के घेरे में आये निजी क्षेत्र के एक्सिस बैंक में भी इसकी पूँजी लगी है। इसके अतिरिक्त शेयर बाज़ार में गिरावट रोकने के लिए भी समय-समय पर इसका इस्तेमाल किया जाता रहा है। एलआईसी की स्थिति यह है कि इसने पहले ही 45 ऐसी कम्पनियों में 3800 करोड़ रुपये का निवेश किया है जिनकी आय या तो शून्य है या वे लगातार घाटे में हैं। 3 साल में इस निवेश की क़ीमत घटकर 780 करोड़ रुपये रह गयी है। इधर इसकी बीमा पॉलिसी ख़रीदने वाले लोग इस इन्तज़ार में बैठे हैं कि शेयर बाज़ार बहुत तेज़ है, अर्थव्यवस्था बड़ी मज़बूत हैं, एलआईसी बोनस के रूप में ज़बरदस्त मुनाफ़ा बाँटेगा। मगर इसके पैसे का इस्तेमाल सरकार निजी वित्तीय पूँजीपतियों को संकट से उबारने में कर रही है, जिससे एक दिन ख़ुद इसके ही संकट में आ जाने का अन्देशा खड़ा हो गया है।

आईएलएफ़एस के मामले से दो बातें स्पष्ट पता चलती हैं - एक तो यह कि समाजवाद के नाम पर बनाये गये सार्वजनिक क्षेत्र के ढाँचे का मुख्य काम निजी पूँजीपतियों को मालामाल करने का रहा है। यही सार्वजनिक क्षेत्र में घाटे का मुख्य कारण है। पिछले 70 साल में खड़े हुए बहुत सारे पूँजीपतियों के दौलत के अम्बारों के पीछे सार्वजनिक क्षेत्र की बड़ी भूमिका रही है, हालाँकि हमारे देश के संसदीय वामपन्थी दलों और उनसे जुड़े बुद्धिजीवियों ने इसके पक्ष में समाजवाद के निर्माण के भ्रम का जाल खड़ा करने में शासक वर्ग की महती सेवा की। दूसरे, संकटग्रस्त पूँजीवाद अब मध्यम वर्ग के बड़े हिस्से को कुछ सुविधाएँ देने की स्थिति में नहीं रहा है और अब उनके द्वारा संचित रक़म पर डाका डालना उसकी ज़रूरत बन गया है। इसके लिए अब बैंक, बीमा, पीएफ़, पेंशन की बचतों पर निशाना साधा जा रहा है।

पर संकट की असली वजह एक आईएलएफ़एस या एक आईडीबीआई या एक यस बैंक ही नहीं हैं। इसकी असली वजह पूँजीवादी व्यवस्था के मूल चरित्र में है। अधिकतम मुनाफ़े के लिए पूँजीपति मालिक अचल पूँजी (मशीन, तकनीक) में इज़ाफ़ा कर उत्पादन प्रक्रिया में लगी चल पूँजी या वास्तविक मज़दूरी कम करता है, कम मज़दूरों से अधिक उत्पादन कराता है। पर मज़दूर वर्ग के पास पैसा न होने से उसकी क्रय क्षमता या खपत कम होती है, ज़रूरत होते हुए भी लोग आवश्यक वस्तुएँ ख़रीद नहीं पाते, बाज़ार में माँग कम होती है; अनबिके उत्पादों से गोदाम पटने लगते हैं, कारख़ानों में उत्पादन स्थापित क्षमता से कम होने लगता है, पूँजीपति उद्योगों में नया निवेश बन्द कर देते हैं; मशीनों, बिजली, जैसे पूँजीगत उत्पादों का उत्पादन घटाना पड़ता है, विद्युत उत्पादन फ़ालतू हो तो संयन्त्र बन्द और दिवालिया होते हैं, उन्हें दिया बैंकों का क़र्ज़ डूबता है, उनमें निवेश करने वाली वित्तीय कम्पनियों के पास

(पेज 12 पर जारी)

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक: सुखविन्दर, अभिनव ● सम्पाकीय पता: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006